PRINTED BY K. C. BANERJEE AT THE ANGLO-ORIENTAL PRESS,

LUCKNOW.

and

Published by Surjan Lal Pande,

Secretary,

The Rama Tirtha Publication League ; Lucknow.

1921.

विषयानुक्रम ।

विषय	पृष्ठ
निवेदन	
प्रेरणा का स्वरूप	१
सब इच्छाओं की पूर्त्ति का मार्ग	२०
कर्म	४२
पुरुषार्थ और प्रारब्ध	६६
स्वतंत्रता	८५

——:•※•:——

श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली
के
स्थायी ग्राहक होने के नियम।

[१] उद्देश:—ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ जी के उपदेशों और उनके उपदेशों के समर्थक अन्य हिन्दी साहित्य का यथासाध्य सस्ते मूल्य पर प्रचार करना।

[२] पुस्तकः—एक वर्ष में, २०"×३०" [डबल क्राउन] १६ पेजी आकार के १००० पृष्ठ विषयविभाग और लेख-बंध की अनुकूलता के अनुसार पृथक् २ पुस्तकों में विभक्त करके दिये जायंगे।

[३] मूल्यः—इस ग्रन्थावली का वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित सादी ३॥) और सजिल्द ४) रहेगा।

[४] वर्षः—कार्तिक से आश्विन तक का एक वर्ष माना जायगा जिसमें वर्षारम्भ में ही प्रथम पुस्तक वी. पी. द्वारा भेज कर वार्षिक मूल्य वसूल किया जायगा अथवा ग्राहक को म. ओ. द्वारा भेजना होगा।

[५] वर्ष के मध्य या अन्त में मूल्य देने वालों को भी उसी वर्ष की सब पुस्तकें दी जायंगी। अन्य किसी मास से १२ मास का वर्ष नहीं हो सकता अर्थात् किसी ग्राहक को थोड़ी एक वर्ष की और थोड़ी दूसरे वर्ष की पुस्तकें वार्षिक मूल्य के हिसाब से नहीं दी जातीं।

[६] किसी एक पुस्तक के ग्राहक को स्थायी ग्राहक होते समय उस पुस्तक की कीमत वार्षिक मूल्य में मुज़रा नहीं की जाती, अर्थात् वार्षिक मूल्य की पूरी रक़म एक साथ पेशगी जमा करने पर ही वह ग्राहक स्थायी हो सकेगा।

[७] पत्र व्यवहार में उत्तर के लिये टिकट या कार्ड भेजे बिना उत्तर नहीं दिया जाता। पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक कृपया अपना पता पूरा और साफ़ २ लिखें।

☞ प्रत्येक भाग में १२८ पृष्ठ और स्वामी जी का चित्र है।

स्वामी रामतीर्थ;

उनके सदुपदेश— –भाग १, २, ३, ४, ५, ६, ।

प्रत्येक भाग का मूल्यः—सादी ॥) सजिल्द ॥।)

डाक व्यय तथा वी. पी. अलग ।

आज पर्यन्त छे भाग छप चुके हैं।

भाग पहलाः—विषयानुक्रम (१) आनन्द । (२) आत्म-विकास । (३) उपासना (४) वार्तालाप ।

भाग दूसराः—विषयानुक्रम (१) जीवनचरित । (२) सान्त में अनन्त । (३) आत्मसूर्य और माया । (४) ईश्वर-भक्ति । (५) व्यावहारिक वेदान्त । (६) पत्रमञ्जूषा । (७) माया ।

भाग तीसराः—विषयानुक्रम (१) रामपरिचय । (२) वास्तविक आतमा । (३) धर्म-तत्त्व । ४) ब्रह्मचर्य । (५) अकबर-दिल्ली । (६) भारत वर्ष की वर्त्तमान आवश्यकतायें । (७) हिमालय । (८) सुमेरु दर्शन । (९) भारतवर्ष की स्त्रियां । (१०) आर्य माता । (११) पत्र मञ्जूषा ।

भाग चौथाः—विषयानुक्रम (१) भूमिका । (२) पाप; आत्मा से उसका सम्बन्ध । (३) पाप के पूर्वलक्षण और निदान । (४) नक़द धर्म । (५) विश्वास या ईमान । (६) पत्र मञ्जूषा ।

भाग पाँचवाः—विषयानुक्रमः—(१) रामपरिचय । (२) अवतरण । (३) सफलता की कुंजी । (४) सफलता का रहस्य । [५] आत्म कृपा ।

भाग छठाः—विषयानुक्रम [१] प्रेरणा का स्वरूप । [२] सब इच्छाओं की पूर्ति का मार्ग । [३] कर्म । [४] पुरुषार्थ और प्रारब्ध । [५] स्वतंत्रता ।

ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ जी के शिष्य श्रीमान् आर. ऐस.
नारायण स्वामी द्वारा व्याख्या की हुई

श्रीमद्भगवद्गीता ।

प्रथम भागः—अध्याय ६ पृष्ठ संख्या ८३२ ।

मूल्य मात्रः—

साधारण संस्करणः; सफेद कागज, कार्ड बोर्ड की जिल्द २)
डाक व्यय और वी. पी ।~)

विशेष संस्करणः उत्तम चिकना कागज, कपड़े की जिल्द ३)
डाक व्यय और वी. पी. ।=)

अभ्युदय कहता है:—"हमने गीता की हिन्दी में अनेक व्याख्याएं देखी हैं परन्तु श्री नारायण स्वामी की व्याख्या के समान सुन्दर, सरल और विद्वत्तापूर्ण दूसरी व्याख्या के पढ़ने का सौभाग्य हमें नहीं प्राप्त हुआ है । स्वामी जी ने गीता की व्याख्या किसी साम्प्रदायिक सिद्धान्त की पुष्टि अथवा अपने मत की विशेषता प्रतिपादित करने की दृष्टि से नहीं की है । आप का एक मात्र उद्देश्य यही रहा है कि गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने जो कुछ उपदेश दिया है उसके उत्कृष्ट भाव को पाठक समझ सकें ।"

प्रेक्टिकल मेडिसिन [दिल्ही] का मत है—'अन्तिम व्याख्या ने जिसको अति विद्वान् श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक ने गीतारहस्य नाम से प्रकाशित किया है, हमारे चित्त में बड़ा प्रभाव डाला था, परन्तु श्रीमान् आर० ऐस० नारायण स्वामी की गीता की व्याख्या ने इस स्थान को छीन लिया है । इस पुस्तक ने हमें और हमारे मित्रों को इतना मोहित कर लिया है कि हमने उसे अपने नित्य प्रातःस्मरण की पाठ पुस्तकों में सम्मिलित कर दिया ।"

नोट—श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली के ग्राहकों को भी अब इस ग्रन्थ का डाकव्यय देना पड़ेगा ।

निवेदन

इस भाग के भेजने पर हमारे स्थाई ग्राहकों की सेवा में छः भाग उन आठ भागों में से पहुंच जायंगे जिन का एक वर्ष में देना निश्चय किया गया था और जो प्रेस व अन्य कठिनाईयों के कारण अब तक पूरे छप नहीं सके। हमें बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी हम छटे भाग को अपने पूर्व निवेदनानुसार दीप-मालिका तक मुद्रित न कर सके और न उन सातवें और आठवें अंकों को जो एक ही पुस्तक के आकार में निकालने थे अभी तक निकाल सके। हम आप को निश्चय दिलाते हैं कि इस में हमारा कुछ भी दोष नहीं है। मुख्य कारण विलम्ब का प्रैस है। यद्यपि इस कार्य के लिये लीग ने दो प्रैस नियुक्त कर रक्खे हैं तथापि वहाँ कार्य की अधिकता से काम समय पर पूरा नहीं होसका। लीग इस कठिनाई के कारण एक अलग प्रैस खोलने का भी विचार कर रही है, यदि इस में ईश्वर कृपा से सभासदों व ग्राहकों ने सहायता दी तो पूर्ण आशा है कि यह कठिनाई भी दूर होजायगी। दूसरा कारण विलम्ब का छिन्दवाड़े के वकील साहिब का झगड़ा है जिन्हों ने पहिले भी व्यर्थ अड़चन डाली थी।

इन उलझनों के ही कारण हम अपनी पूर्व प्रतिज्ञा को पूरा न कर सके। आशा है कि उक्त कठिनाईयों को ध्यान रखते में हुए रामप्रेमी हमें क्षमा करेंगे।

सातवाँ और आठवाँ खण्ड एक ही पुस्तक के आकार में राम वर्षा के नाम से मुद्रित किया जा रहा है। आशा है कि वह मार्च मास में पाठकों के कर कमल में पहुंच जायगा

जिसके पहुंचने पर हमारे स्थाई ग्राहकों का चंप समाप्त हो जायगा और हम अपने ऋण से उऋण हो जायंगे।

जैसा कि पहिले एक बार सूचना दी जाचुकी है कि दिन प्रति दिन कागज़, छपाई तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की मंहगाई होने पर भी हम ने घाटा उठाकर अपने पुराने ग्राहकों को पूरे १००० पृष्ट के आठ भाग पूर्व मूल्य पर ही दिये हैं, पर आगे ऐसा करने में हम असमर्थ होंगे। इस लिये ऐसा विचार हो रहा है कि आगामी वार्षिक शुल्क ३॥) से घटा कर दो रुपया कर दिया जाय और पृष्ट संख्या भी १००० के स्थान पर ५०० कर दी जाय जिससे ग्राहकों को भी कठनाई न हो और हम भी वर्ष के भीतर २ भागों को सुगमता पूर्वक पहुंचा सकें।

हमें पूर्ण आशा है कि ग्राहकगण इस परिवर्तन को सहर्ष स्वीकार करेंगे और प्रत्येक प्रकार से सहायता देते हुए, हमारा उत्साह बढ़ाते रहेंगे।

मन्त्री

ता० १—२—२१

श्री स्वामी रामतीर्थ।

अमेरीका १९०४

स्वामी रामतीर्थ।

प्रेरणा का स्वरूप।

(ता० २१ फरवरी १९०३ को स्वामी राम का दिया हुआ व्याख्यान)

भारत में एक सभा में बुद्धिमान लोग, बड़े बुद्धिमान लोग उपस्थित थे, और हिन्दू धर्म-ग्रन्थों से पवित्र वचन पढ़े जा रहे थे। आचार्यों द्वारा जब उन वचनों की व्याख्या हो चुकी और सभा का विसर्जन होनेवाला था तो एक श्रोता ने एक महात्मा का ज़िक्र किया, जो नगर में पधारा था और नदी-तट पर ठहरा था, और उसकी बड़ी ही प्रशंसा की। इस महात्मा का अधिक हाल जानने के लिये लोग स्वभावतः बहुत उत्सुक हुए। एक तोता इस बात चीत को सुन रहा था, अथवा यह कह लीजिये कि एक गुलाम नगर

में आने वाले महात्मा के सम्बन्ध की यह बातचीत सुन रहा था। जो भलामानुस महात्मा की चर्चा कर रहा था उससे पिंजड़े में बन्द तोते या गुलाम ने कहा कि जाइये और मेरे छुटकारे का अव्यर्थ उपाय उस महात्मा से पूछ आइये। जिस भलेमानुस से पहले महात्मा से भेंट हुई थी वह ऐसे समय पर महात्मा के पास पहुँचा जब वह नदी में स्नान कर रहा था और यह प्रश्न किया, 'पिंजड़े में बन्द उस पक्षी, तोते या मान लीजिये, उस विशेष मनुष्य का छुटकारा कैसे हो सकता है? वह कैसे छूट सकता है?" जब प्रश्न किया गया था, ठीक उसी समय महात्मा तेज धारा में वह जाते दिखाई पड़ा। नगर निवासियों ने उसे मरा हुआ देखा। महात्मा की यह दशा देखने वाले लोग चकित होगये और उन्होंने प्रश्नकर्त्ता या तोते अथवा गुलाम का सन्देश लानेवाले मनुष्य को बहुत डाँटा-डपटा। लोगों ने समझा कि पिंजड़े में क़ैद तोते या बन्द गुलाम की हालत पर रहम खाने के कारण महात्मा मूर्छित या बेहोश होगया है। जान यह पड़ा कि महात्मा को उस दिन चेत नहीं हुआ। दूसरे दिन फिर जब उस स्थान पर सभा हुई जहाँ पिंजड़े में पड़ी चिड़िया या बन्द गुलाम था तब तोते या गुलाम ने महात्मा से भेंट करने वाले भलेमानुस से पूछा, हमारा सन्देश कहा था? उस भले मानुस ने जवाब दिया कि तुम्हारा सन्देश कह दिया गया था, और साथ ही कहा कि पिंजड़े में क़ैद तोते जैसे अभागे या बँधे हुए गुलाम सरीखे दुखिया का संदेश ले जाने के लिये मुझे खेद है। तोते या गुलाम ने पूछा कि आप खिन्न क्यों हैं? भद्र पुरुष ने कहा कि सन्देश सुनते ही महात्मा को मूर्छा आगई। सब लोगों को आश्चर्य होने लगा, चकित हुए, कि यह मामला क्या है। किन्तु तोते

या गुलाम ने सब भेद समझा दिया । तोता या आप कह सकते हैं, गुलाम बुद्धिमान नहीं था । किन्तु यह बात सुनते ही तोते को भी मूर्छा आगई । उस के मूर्छा आगई और देखने में वह मर ही गया । देखने वाले चकित होगये कि अद्भुत संदेश था, जिसके कारण दो की मृत्यु हुई । महात्मा के पास सन्देश पहुँचा तब तो वह मरा. और जब तोते या गुलाम को इसकी खबर दी गई तब गुलाम मरा । क्या आप जानते हैं कि इसके बाद क्या हुआ ? जब पास के लोगों ने देखा कि तोता मर गया तब उसे पिंजड़े में डाले रखना उन्हों ने मुनासिब नहीं समझा । उन्होंने पिंजड़ा खोल दिया और तुरन्त तोता उड़ कर बाहर आया और बोला, पवित्र धर्म ग्रन्थों को सुनने के लिये यहाँ नित्य एकत्र होने वाले ऐ सभ्यो ! ऐ लोगो ! तुम नहीं जानते कि मुक्ति, अनुभव, ईश्वरीय प्रेरणा की प्राप्ति कैसे हो सकती है । महात्मा से मेरे संदेश का जो उत्तर मिला उससे मैं ने आज वह (मुक्ति का) उपाय सीखा है । महात्मा को मूर्छा नहीं आई थी । मूर्छित होकर, वेहोश होकर महात्मा ने मानो मुझे अनुभव का उपाय बताया था, मेरे सन्देश का उत्तर दिया था । मुक्ति का मार्ग, अनुभव की विधि जाहिर में मृत्यु है । उसके सिवाय किसी और तरह, बलिदान की अपेक्षा किसी अन्य सरल उपाय से प्रेरणा (ईश्वरीय सन्देश) की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

आत्मानुभव का उपाय है देहाध्यास से उपर उठना, आध्यात्मिक रूप से उस अवस्था में प्राप्त होना, आन्तरिक मुक्ति की उस दशा में पहुँच जाना, जहाँ शरीर मानो मृतक है, जहाँ क्षुद्र व्यक्तित्व अचेतन है, बिलकुल बेपते है, बिलकुल पीछे छूट गया है; यही नित्य जीवन का मार्ग है ।

संस्कृत में दो शब्द बड़े मार्के के हैं, एक भोग और दूसरा योग। आप लोगों में से अधिकांश योग शब्द से परिचित हैं। शायद आपने योग का प्रतियोगी भोग शब्द भी पढ़ा हो। भोग का शाब्दिक अर्थ है ग्रहण और योग का अर्थ है त्याग। लोग इस संसार में भोग की चर्चा बहुत करते हैं। सुख-भोग क्या है ? सुख-भोग की यदि आप परीक्षा करें, विश्लेषण 'Analysis करें तो आप उसे योग अर्थात् त्याग के सिवाय और कुछ नहीं पावेंगे। बिना त्याग के वास्तविक भोग नहीं है, बिना त्याग के (दैवी) प्रेरणा कहाँ, बिना त्याग के प्रार्थना नहीं। क्षुद्र व्यक्तित्व को प्रसन्नता पूर्वक बनाये रखना और आत्मभोग, ये दोनों बातें साथ नहीं हो सकतीं। जिस क्षण जहाँ प्रसन्नता होती है उस क्षण वहाँ भोग करने वाला स्वयं नहीं होता। जिस क्षण जहाँ प्रेरणा होती है वहां "मैं जानता हूं" और "मैं यह करता हूं" का भाव नहीं उपस्थित रह सकता। बड़े २ आचार्यों ने यही इस सम्बन्ध में बतलाया है। जो मनुष्य अपने आप पर स्वामी है उसका काव्य के द्वार पर खटखटाना व्यर्थ है। तुम ऐसी दशा में नहीं हो सकते कि कविता भी रचो और उसका मज़ा भी लूटो। ऐसा नहीं हो सकता तुम अपने आप पर स्वामी और साथ ही काव्य-लेखक नहीं हो सकते। किसी के भी द्वारा लिखना और उसके साथ ही लिखने के तथ्य का ज्ञान नहीं हो सकता। जब वह उस ज्ञान का रूप हो जाता है, तभी वह प्रेरणा (आवेश) के स्थान का स्पर्श करता है। कारीगर को अपनी कारीगरी के भेंट होना ही होगा। जब आप परम कुशल कारीगर का काम निबाहते हैं, तब दूसरों की दृष्टि में आप बड़े भारी कारीगर होते हैं, परन्तु अपने विचार बिन्दु से उस समय आप होते ही नहीं। "मैं कह रहा हूं" का ज़रा भी विचार मौजूद नहीं

है, आप की सर्व से एकता होगई है। जब आप अपने नुक़्ते-ख़याल से कारीगर नहीं हैं, तब दुभाषिया, लिखना, और लेखक एक हो जाते हैं। तब सम्पूर्ण भेद भाव का विनाश हो जाता है। यह है प्रेरणा का स्वरूप, प्रेरणा का रहस्य। लोग कहते हैं, "वह आध्यात्मिक पुरुष है"। परन्तु जब वह स्वयं अपने को दैवी संदेश से युक्त समझता है तब वह अभिनिवेश में (दैवी प्रेरणा) में नहीं होता। दूसरे उसे प्रेरणा में समझते हैं। दूसरे लोग इन्द्र धनुष की ओर देखते हैं और रंगों की, सुन्दर उज्ज्वल रंगों की प्रशंसा करते हैं। वे उन्हें (रंगों को) पसन्द करते हैं, उनकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु जहां पर इन्द्रधनुष दिखाई पड़ता है वहां तो जाइये। परीक्षा कीजिये, सावधानी से देखिये, और आप को कोई भी इन्द्रधनुष न दिखाई देगा। आप को वहां पर इन्द्रधनुष न दिखाई देगा। इन्द्रधनुष दूसरों की दृष्टियों में मौजूद है। परन्तु दूसरे (इन्द्र धनुष के) स्थान के दृष्टि बिन्दु से, अथवा जिस स्थान पर दूसरे लोग इन्द्रधनुष देखते हैं उस स्थान पर बैठे हुए मनुष्य के दृष्टि बिन्दु से वहां पर कोई इन्द्रधनुष नहीं है।

इसी प्रकार दूसरों के नुक़्ता ए-ख्याल से एक व्यक्ति प्रेरणा में, महापुरुष, लेखक, विचारशील, तत्ववेत्ता समझा जाता है। परन्तु स्वयं अपने विचार बिन्दु से उस समय उसमें इस तरह का कोई प्रपञ्च नहीं मौजूद होता कि, "मैं लिख रहा हूँ" या "मैं प्रेरणा में हूँ"। कारीगर को अपनी कारीगरी की भेंट चढ़ना ही होगा। मक्खियों की भांति कारीगरों को अपने डंक-प्रहार में अपने प्राण भर देने चाहिए। प्रेरणा का यही पूरा रहस्य है। मक्खी आप के

डंक मारने के बाद मर जाती है। इस प्रकार वही प्रेरित है जो अपने डंक-प्रहार में अपना सम्पूर्ण जीवन भर देता है। यही पूर्ण रहस्य है। यह नहीं हो सकता कि एक ही समय में तुम अभिनिवेश में भी हो और भोग भी करो। किसी वस्तु का भोगने की चेष्टा करते ही तुम प्रेरणा में नहीं रह जाते। जब तुम प्रेरणा में होगे तब दूसरे तुम्हें भोग करेंगे, संसार तुम्हें भोग करेगा। परन्तु तुम स्वयं एक ही साथ प्रेरणा युक्त और भोग करने वाले दोनों नहीं हो सकते। तुम भोगी तो न होगे, परन्तु और भी अच्छे होगे, स्वयं सुख होगे।

पतंग दीपक की लौ में जल मरता है और तब अपना प्रेम प्रमाणित करता है। साधारण पाखी और पतिंगे में भेद किये जाने के लिये यह आवश्यकता होती है कि पतिंगा दीपक से दग्ध होकर सिद्ध करदे कि वह पाखी पतंग है। इसी तरह प्रेरणा युक्त मनुष्य ठीक प्रेरणा युक्त मनुष्य समझा जाने के लिये, उसकी प्रेरणा शक्ति प्रमाणित और प्रगट होने के लिये यह आवश्यक है कि वह मनुष्य योगी हो। भय से परे, दूर, दूर वह जाता है, संसार के लिये सब तरह से मृतक होता है।

जीवित प्रकृति को छोड़ कर और कहीं से कभी कोई महान मेधावी genious प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सका। प्रकृति से एक उपमा लेकर इसका दृष्टान्त दिया जायगा। पानी इस पृथिवी को जीवन प्रदान करता है। प्रकाश के साथ पानी ही इस संसार में सब प्रकार की उपजों का कारण होता है। तुम्हारी खेती पानी से पकती हैं, पानी ईश्वर का बड़ा भारी प्रसाद है। इस देश में लोग वर्षा को नहीं पसन्द करते। परन्तु

भारत में, और पूर्व के सभी देशों में वृष्टि संसार का सब से बढ़ कर कल्याणकारी पदार्थ है। बड़े २ तत्त्वज्ञानी और बड़े २ कवि, प्रेरणा के अभिलाषी महापुरुष लोग, सदा उस अवसर से लाभ उठाते हैं जब आकाश में मेघ गर्जते होते हैं और ज़ोर से पानी बरसता होता है। सभी कवि और दैवी प्रेरणा पाने के सभी अभिलाषी ऐसे अवसरों को बड़ी उत्सुकता से ढूढ़ते हैं, और राम स्वयं अपने अनुभव से कह सकता है कि अन्य समयों की अपेक्षा वर्षा होते समय राम के लिये कविता करना कहीं सहज होजाता है। जब पानी बरसने वाला होता है, या जब फुहार पड़ती होती है तब मन आप से आप उच्चाशय हो जाता है और दिमाग काव्य-वृत्ति धारण करता है, तथा प्रत्येक वस्तु अत्यन्त भावोन्मेष कारिणी (भाव को पैदा करने वाली) बन जाती है। वृष्टि के द्वारा स्वर्ग और पृथिवी के संयोग के सिवाय और कोई दूसरा जाहिर कारण भी इस असाधारण अभ्युत्थान का नहीं बताया जा सकता। मेह के द्वारा पृथ्वी और स्वर्ग का संयोग होता है। भारत में ऐसे अवसरों पर साधारणतः विवाहोत्सव होते हैं। लोग समझते हैं कि पृथिवी और स्वर्ग का संयोग होता है। इस लिये नर और नारी को भी अपनी विवाह-ग्रन्थि बाँधने दो। अब यहाँ पर यह विचार करना चाहिये कि वायुमण्डल हमें प्रेरणा युक्त किस तरह करता है, और मेह, ओस, पवन के मनोहर झोंके क्यों कर देता है। समग्र आकाश-मण्डल की प्रेरक कौन सी वस्तु है? विज्ञान हमें बताता है कि आकाश-मण्डल की प्रेरणा का कारण अतिपूर्णता नामधारी चीज़ है। इस शब्द की व्याख्या होनी चाहिए। एक कटोरा दूध लीजिये और उसमें शक्कर मिलाइये। शक्कर घुल जायगी थोड़ी। और शक्कर डालिये,

वह भी घुल जायगी। परन्तु अन्त में एक ऐसी सीमा आवेगी जब शक्कर न घुलेगी। फिर थोड़ी या बहुत आप चाहे जितनी शक्कर छोड़ें, वह घुलेगी नहीं। यह एक बिन्दु है जहां शक्कर की एक मात्रा घुली हुई है, और अब दूध और शक्कर नहीं सोक सकता, अब और शक्कर दूध को नहीं स्वीकार है।

इस विन्दु को अतिपूर्णता का विन्दु कहते हैं। हम देखते हैं कि पानी किसी सीमा या अंश तक निमक को घुलाता है परन्तु उस अंश के बाद पानी निमक की और अधिक मात्रा नहीं ग्रहण करता। यदि और निमक छोड़ा जायगा तो वह पड़ा रहेगा, वह तह पर बैठ जायगा, वह घुलेगा नहीं। अब पानी को निमक से अतिपूर्ण समझना चाहिए। पानी मट्टी से भी अतिपूर्ण हो सकता है। मट्टी की एक मात्रा हम पानी में छोड़ दें, वह उसमें घुल-मिल जायगी। परन्तु थोड़ी और छोड़ो, वह न घुलेगी, और तब पानी को मट्टी से अतिपूर्ण समझना चाहिए। हमारा यह वायु-मण्डल नत्रजन (नाइट्रोजेन) अम्लजन (आक्सिजेन), कर्बन डाइओक्साइड, सजीव पदार्थ (आरगैनिक मैटर), भौतिक कणों (मैटीरियल पार्टिकिल्स), और जल वाष्प (ऐक्वीयस वेपर) का बना हुआ है। पानी के कण हवा में लटके रहते हैं। एक समय आता है जब वायुमण्डल जल-वाष्प से अतिपूर्ण हो जाता है। ऐसे समय भी होते हैं जब वायुमण्डल जल-वाष्प से अतिपूर्ण नहीं होता है। परन्तु जब वायुमण्डल जल-वाष्प से अधिकता से अतिपूर्ण होता है और उसकी थोड़ी सी और मात्रा आजाती है तब हवा अपने पानी को धारण किये रहने में असमर्थ हो जाती है। अतिरिक्त जल, अथवा वायुमण्डल में मौजूद वह

जल जो वाष्प की उस मात्रा से अधिक होता है जितनी वायुमण्डल की अतिपूर्णता के लिये यथेष्ट है, वह जल मेंह के रूप में नीचे गिरता है। इस तरह जब वायुमण्डल में उसे अतिपूर्ण करनेवाली मात्रा से अधिक जल होता है तब संसार में वृष्टि होती है, ओस गिरती है, तूफान आते हैं, झोलियां पड़ती हैं। ऐसे चमत्कार अतिपूर्णता के बिन्दु के बाद होते हैं। यह हम पीछे विचारेंगे कि यह अतिपूर्णता कैसे संघटित होती है। अभी इतनाही कहना काफी है कि वायुमण्डल के प्रेरणा में आने के लिये, वृष्टि होने के लिये, अतिपूर्णता की सीमा तक पहुँचना ज़रूरी है, बल्कि उसका अतिक्रमण होना चाहिए, वाष्प को अतिपूर्ण होना चाहिए बल्कि उसमें जल की और भी अधिकता होनी चाहिए। यह दशा प्राप्त होने पर शुभ फल होता है, संसार में महान परिणाम होते हैं। इसी तरह यह तुम्हारा मन है, जिसकी तुलना वायुमण्डल या पवन से की जासकती है। जब मन किसी भावना से परिपूर्ण होजाता है और उससे तुम्हारा मन भर जाता है, वह तुम्हारे मन को जीत लेती है, तुम्हारे मन को आवृत कर लेती है और मन में व्याप्त हो जाती है, तुम्हारी समग्र आत्मा में भर जाती है, तब तुम्हें अतिपूर्ण कर देती है। अब ध्यान दीजिये। जब तुम्हारा मन किसी भावना से अतिपूर्ण हो जाता है, तब आप अपने मनको विचित्र अवस्था में पाते हैं, और उसे बेचैनी की हालत कहते हैं। मन की यह हालत उस हालत से खूब ही मिलती-जुलती है जिसे हम निस्तब्धता कहते हैं, जिसे इस भूमि पर हम रुकाव की हालत कहते हैं। और आप जानते हैं कि अति रुकाव Closeness की हालत में लोग वृष्टि की आशा करते हैं। जब आप अति रुकाव, वायुमण्डल में अति पूर्णता पाते हैं, तब अति पूर्णता

के बिन्दु का अतिक्रमण होने पर वृष्टि की आशा करते हैं। इसी प्रकार जब आप का मन किसी भावना से निरानिर परिपूर्ण हो जाता है, तब वह उस हालत में होता है जिसकी उपमा बड़ी खूबी से उस हालत से दी जा सकती है जिसे हम रुकाव या निस्तब्धता की हालत कहते हैं। जब आपका मन आप की प्रिय वस्तु के विचार से अति पूर्ण होता है तब, आपने खयाल किया होगा, एक ऐसा समय आता है कि मन रुकाव, निस्तब्धता या बेचैनी, अथवा अवर्णनीय घबड़ाहट की हालत में होता है, जिसे लोग अजीब बेचैनी कहते हैं। जब इस दशा का अति क्रमण होता है, जब आप इस दशा को पार कर जाते हैं, आप कवि हो जाते हैं, तब कविता आप से टपकने लगती है; मधुर पद्यों की, अति उत्तम गीतों की वर्षा होने लगती है। यही हालत थी। जब आपका चित्त प्रेरणा के बिन्दु को पार कर गया, या उससे आगे बढ़ गया, तब काले और सफेद रूप में घनी भूत विचार टपक पड़े। तब प्रेरणा थी।

यह एक आदमी है। उसके मन में एक विचार बैठता है, एक समस्या हल करने की वह ठानता है। वह उसे फैलाने लगता है, वह काम करता है और फिर काम करता है, परन्तु हल नहीं कर पाता। आप में से जिन लोगों ने गणित या तत्त्वज्ञान की गहरी समस्याओं को हल करने की चेष्टा की है वे स्वानुभव से राम की बात को पुष्ट कर सकते हैं। हम एक गहरी समस्या को हल करने लगते हैं, प्रारम्भ में जब हम समस्या हल करने लगते हैं तब हमारा चित्त अति पूर्ण नहीं है, हमारे चित्त में और भी वासनायें व्याप्त हैं। यह पदार्थ प्राप्त करने की इच्छा अथवा इस वा

उस पदार्थ की लगन आप के चित्त में प्रबल है, और समस्या हल करने की इच्छा भी आप के चित्त में मौजूद है। गम्भीर समस्या हल नहीं हुई। जब आप देखते हैं कि कुछ प्रयत्नों से समस्या हल नहीं हुई, तब आप कुछ बेचैन हो जाते हैं और दूसरे पदार्थों के प्रति अपनी लगन को दूर कर देते हैं। अब आप कुछ अधिक मुक्त हो गये, दूसरे शब्दों में वह विशेष भावना आप के सामने अधिक प्रमुख हो जाती है, आप के चित्त में अधिकाधिक भर जाती है और दूसरे विचारों को निकाल भगाती है। समस्या अब भी नहीं हल हुई। अधिकांश अन्य विकारों और अनुरागों से भी छुट्टी लेली जाती है, फिर भी आप के चित्त में, संस्कृत की शब्दावली में, अहंकार का भाव बना रहता है, "मैं यह करता हूं" और "मुझे इसका श्रेय मिलता है"। तब क्या होता है? समस्या नहीं हल हुई। कुछ देर बाद, जब आप उसे हल करने की धुन में लगे ही रहते हैं और उस पर सोचते ही जाते हैं, मैं और तुम का ध्यान बिलकुल दूर हो जाता है; और वह भावना आपके चित्त में सर्व प्रधान हो जाती है। जब यह गति हो जाती तब मैं और तुम, मेरा और तेरा, अथवा काल और दिक का ध्यान बिलकुल जाता रहता है। आप के चित्त में समग्र स्थान वकही भावना घेर लेती है, वह आप के दिल में कोई शून्य स्थान नहीं छोड़ती, आपके हृदय में कोई खाली जगह नहीं रखती और यह कह सकते हैं कि आत्मा उस भावना से अति पूर्ण हो जाती है तथा भावना से आप की अभिन्नता हो जाती है। अब पतंगा दग्ध होने लगा, मधुमक्खी ने अपना जीवन देदिया, क्षुद्र अहंकार पर स्वामित्व जाता रहा, भोग का विचार चला गया। जब इस अवस्था में पहुँच होगई, तब बलिदान होगया, सहसा आप प्रेरणा में आ गये, और

आपके अन्दर साधन कौंध जाता है। क्या लोग इस वाक्य का उपयोग नहीं करते, "मुझे यह सूझती है", "मुझे यह सूझी"? बिना इस जीवन में मृत्यु के तुम भोगी और प्रेरणा में नहीं हो सकते।

कला-कुशल, शिक्षक, तत्त्वज्ञानी, और विचार शील अपने अपने क्षेत्र में प्रेरणा पाते हैं। परन्तु इस प्रेरणा या आवेश की प्राप्ति केवल आहुति या बलिदान से होती है। इस संसार में लोग अपने को भोगी बनाये रखना चाहते हैं, अपने को कर्ता बनाये रखना चाहते हैं, परन्तु वेदान्त प्रकट करता है कि यह प्रकृति के नियमों से संगत नहीं है कि आप किसी चीज़ को भोगें। किसी पदार्थ का भोग करना मनुष्य के लिये नहीं है। भोक्ता (भोग करने वाला) पुरुष झूठा पुरुष है, वह असली पुरुष नहीं है, वह तुम नहीं हो। सब विचार शीलों और तत्त्वज्ञानियों को अपने शरीर, अपने चित्त, अपनी सारी हस्ती का समस्त संसार द्वारा भोग होते देखना पड़ेगा। वही रास्ता है। यदि आप भोक्ता होना चाहते हैं तो मुक्ति, आनन्द, मुक्ति का मार्ग आप के लिये बन्द है, रुका है। आप इस संसार का भोग नहीं कर सकते, नहीं कर सकते। आप के लिये केवल एक ही पथ है। और वह यह है कि आपका देह, मन, और सर्वस्व परमात्मा द्वारा भोग किया जाता, परमात्मा द्वारा लीन किया जाता दिखाई दे। जैसा कि ईसा ने प्रभु के भोजन के समय कहा है, "यह, मेरा मांस खाओ;खाओ"। "मेरा यह रक्त तुम्हें पीना होगा"। वह बड़ा सुखी और भाग्यशाली है जिसका समस्त जीवन निरन्तर बलिदान है।

अति पूर्णता की उस सीमा पर जब हम पहुँचते हैं, जब

मन भावना से भर जाता है। जब सारी हस्ती ख़याल में डूब और लुप्त हो जाता है, तब महा गवैया (ईश्वर) यंत्र या उपकरण या वाजे को उठा लेता है और इस उपकरण द्वारा सुन्दर, परम मनोरम, श्रेष्ठ स्वर निकालता है। महान तानें चमत्कार संगीत इस वाजे से पैदा ही होगा। परन्तु बच्चा जब वाजे को अपने ही तक रखना चाहता है और बड़े बजवैये या गवैये को उस वाजे से काम नहीं लेने देता, तब तक वाजा बेसुरा ही गावेगा। जब तक यह पुरुष, यह मिथ्या पुरुष यह अवास्तविक आत्मा, जो भोक्ता पुरुष है, मौजूद है और इस शरीर पर अधिकार बनाये रखना चाहता है तथा इस शरीर को जाने नहीं देता, तब तक इस वाजे या देह से बेसुरी तानें ही निकलेंगी। यह यंत्र या शरीर परम देव को दे दो, इस मिथ्या अहंकार से अपना पीछा छुटा लो, इस तुच्छ अहंकार को दूर करो, इसका बलिदान कर दो, और इससे ऊपर उठो। इसके बाद, जब अतिपूर्णता के बिन्दु का अतिक्रमण हो जाता है, ईश्वर स्वयं इस यंत्र को उठा लेता है, महान गवैया स्वयं यंत्र को हथियाता है और इस यंत्र द्वारा संगीत निकलता है, अतिसुन्दर स्वर उत्पन्न होते हैं। तब आप प्रेरणा में हैं। प्रेरणा ईश्वर की करनी है। जब तुच्छ अहंकार शरीर का कब्जा छोड़ देता है तब मनुष्य निवेशित या प्रेरित होता है।

हमें पता मिलता है कि ईसा द्वारा अपना कर्त्तव्य आरम्भ होने के पूर्व शैतान ने उन्हें बहकाकर भोगी बनाने की चेष्टा की थी। ये सात लोक हैं, ये सुन्दर २ सुस्वादु भोजन हैं, ये राजत्व है, अलौलिक घटना संघटित करके बड़े नामी होने का ये अवसर है, ये सभी प्रलोभन और भोग ईसा के

सामने रक्खे गये थे। ईसा ने क्या उत्तर दिया था? शैतान! मेरे सामने से हटजा। मैं तेरे हाथों से कुछ भी नहीं लूँगा"। खूब, खूब। अमेरिका और यूरोप के लोगों! ईसा की यह नसीहत अपने सामने रक्खो, "शैतान मेरे सामने से दूर हो, तेरे हाथ से मैं कुछ भी न ग्रहण करूँगा"। इस तरह ईसा ने समस्त सांसारिक भोगों को हटा दिया। उसने सूली और वैराग्य ग्रहण किया, और भोग सब त्याग दिये। प्रेरणा का रहस्य, चिन्ह ये तुम्हारे सामने रक्खा है। जब तक भोक्ता या कर्ता के भाव का अनुभव तुम्हारे मन में हो रहा, है तुम निवेशित या प्रेरित नहीं हो सकते, नहीं हो सकते। जब भोक्ता या कर्त्ता का विचार—"मैं काम कर रहा हूँ, मैं कर रहा हूँ, मुझे वाह वाही मिलना चाहिए"—बिलकुल दूर हो जाता है, केवल तभी आप प्रेरणा में हैं।

एक कहानी से राम इसका अन्त करेगा। हिन्दू धर्मग्रन्थों में असुर नाम वाली तीन व्यक्तियों की अति उत्तम कथा है। इन तीन व्यक्तियों में विलक्षण शक्तियां थीं। वे सूरमा थीं, कोई उनसे पार पाने वाला नहीं था। वे विलक्षण पुरुष थे। लोगों ने उनसे युद्ध किया और तुरन्त हार गये। असंख्य शत्रु आये और तुरन्त पराजित हुए। इन तीन पुरुषों से लड़ने वाले हजारों की संख्या में आये और हार गये। इस तरह बहुधा पराजित होने पर शत्रुगण एक महात्मा के पास गये और पूछा कि इन तीन व्यक्तियों को किस तरह नीचा दिखाया जा सकता है। महात्मा ने कहा कि तुम्हें उनकी अजेयता के कारण का पता लगाना चाहिए, ये तीन असुर अजेय क्यों हैं। बड़े प्रयत्न और श्रम से मालूम हुआ कि इन तीनों की अजेयता का कारण यह है कि ये तीनों कार्य

कर्त्ता या भोक्ता होने का विचार अपने मन में कभी नहीं रखते। विजय प्राप्त होजाने पर वे उसका कुछ भी विचार नहीं करते थे। वे विजय का सुख भोगने की परवाह नहीं करते थे। लड़ते समय यह विचार कि "मैं इस शरीर रूप से लड़ रहा हूँ" अथवा यह विचार कि "मैं लड़ रहा हूँ" उनमें बिलकुल नहीं रहता था। इस संसार में नायक ऐसेही होते हैं। जैसे लोग कहते हैं "मैं समग्र ज्ञान या ज्ञान-मय हूँ" उसी तरह, आप जानते हैं, समर समय में युद्ध में लिप्त प्रत्येक नायक समग्र युद्ध या युद्ध मय होता है। "मैं कर रहा हूँ" के विचार के लिये कोई स्थान ही नहीं बच जाता। वहां उसका शरीर एक प्रकार से यंत्रवत् होजाता है। वह संग्राममय होजाता है, वहां पैर हाथ ईश्वरत्व से अतिपूर्ण होते हैं। इस तरह ये लोग जब कभी लड़ते थे, तब रण मय होजाते थे। "मैं लड़ रहा हूं" इस विचार को वे क्षण भर के लिये भी अपने पास नहीं फटकने देते थे। जिस तरह से एक यंत्र काम करता है उसी तरह उनके शरीर काम करते थे। ईश्वर के यंत्र, ईशत्व के यंत्र होकर उनके शरीर काम करते थे। उनकी सफलता की यही कुंजी थी, कोई उनसे नहीं जीत पाता था। उनकी अजेयता का भेद मालूम होने पर अब महान साधु ने इन तीन योद्धाओं को जीतने का उपाय शत्रुओं को बताया। उनसे उन शत्रुओं से कहा कि जाकर उनसे लड़ाई छेड़ो और फिर भाग खड़े हो, उनके पास जाओ और उन्हें लड़ने में लगालो, और जब वे आक्रमण शुरू करें तो उन्हें विजयी छोड़ कर चल दो। इस तरह उन्हें रण क्षेत्र में लाकर उन्हें पीठ दिखा दो। उन सूरमाओं के शत्रुओं ने उन्हें उत्तेजित किया और भाग खड़े हुए। इस तरह उन वीरों के शत्रु और कई बार पराजित हुए। इस प्रकार धीरे २ वे तीन

अजेय शूर अपनी अमोघ स्थिति से हटा लिये गये, अपनी वास्तविक अजेयता से सरका कर अपने शरीरों में ले आये गये, उन्हें यह विश्वास करा दिया कि वे विजयी हैं। उन्हें विश्वास करा दिया गया कि वे महान हैं, वे विजेता हैं। ये तीन मनुष्य शरीर के पिंजड़े में उतार लिये गये, ये तीन आदमी शरीर के कारागार में डाल दिये गये। "मैं कर रहा हूँ" के विचार ने या "मैं महान हूँ" की भावना ने उन पर अधिकार कर लिया और कैदखाने में बन्द कर दिया। उनमें का ईश्वर स्थानच्युत कर दिया गया, और उस का स्थान तुच्छ अहंकार ने ले लिया और तब उन पर विजय पाना और पकड़ कर कैद कर देना कुछ भी कठिन काम नहीं रह गया। अब ये कठिन काम नहीं था, वे तुरन्त हराये और तुरन्त पकड़ लिये गये।

अब इस कहानी के प्रयोग पर ध्यान दीजिये। जब तक कोई काम तुम इस ढंग से करते रहते हो कि मानो तुम्हारा शरीर ईश्वर के हाथ में एक यंत्र रहता है, तुम्हारा व्यक्तित्व ईश्वरत्व में निमज्जित रहता है, जब तक तुम्हारी यह स्थिति रहती है तब तक तुम अजेय हो, उन तीनों असुरों की भांति तुम "मैं भोग रहा हूँ, या मैं कर रहा हूँ" की भावना से परे हो और अजेय हो। पर जब लोग आ कर तुम्हारी तारीफ शुरू करते हैं, तुम्हें (अतिशयोक्तियों से) फुलाने लगते हैं, तुम्हारी खुशामद करते हैं, चारों ओर से तुम्हारी प्रशंसात्मक आलोचना करते हैं, तुम्हें विश्वास करा दिया जाता है कि तुम विजयी हो, नायक हो, तुम विजेता हो, दूसरे विजित हैं, तब तुम्हारे प्रतिद्वंद्वी तुम्हारे विरुद्ध हैं, तब तुम उन तीनों असुरों के समान हो जाते हो। "मैं यह कर रहा हूं" की

भावना हो और "मुझे क्षति का भोग करना चाहिये" "मैं भोक्ता हूँ" का विचार मात्र ही तुमको क़ैद कर लेता है, तुम्हें शरीर के पिंजड़े में उतार लाता है। तुम हो गये, शक्ति जाती रही। बाइबिल में भी क्या आप नहीं देखते कि जब ईसा पहाड़ पर से ताज़ा २ आया था तब उसमें बड़ी शक्ति थी। वह अपने मित्रों के बीच में रहा, उसने बहुत बातचीत की, और उसे कहना पड़ा, "किसने मुझे छू लिया? मैं देखता हूँ कि मेरी शक्ति मुझसे निकली जा रही है"। यह हमें इंजील में मिलता है। वहाँ भी तुम्हें वही बात दिखाई पड़ती है। "मैं कर रहा हूँ, मैं भोग रहा हूँ" जब आप इससे परे होते हैं तब ईश्वर आपके द्वारा काम कर रहा है और आप प्रेरित हैं; किन्तु जब आप कोई काम करके लोगों की समालोचनायें और अपने अनुकूल आलोचनायें,लोगों की तारीफ़ें, लोगों की खुशामदें स्वीकार करते हैं, तब आपकी शक्ति तुरन्त जाती रहती है। वह तुरन्त निकल जाती है, वह फिर पिंजड़े में डाल दी गई। पिंजड़े से बाहर निकलो और तुम प्रेरित हो। फिर पिंजड़े में तुम चले जाओ और तुम्हारा अन्त हो गया।

कल्पना करो कि यहाँ एक सुन्दर घड़ी है। वह ठीक है और दिन रात चल रही है। वह एक प्रबल चुम्बक के निकट आती है और आकर्पित हो जाती है, लोहे के स्प्रिंग आकर्पित हो जाते हैं। घड़ी अब चल नहीं सकती, अब वह बेकाम है, समय नहीं बताती। अब इसके साथ में क्या करूँ? घड़ी को ज़मीन में तोप दो, आकर्पणशील प्रभावों से उसे दूर रक्खो, वह चुम्बक के आकर्पण से छूट जायगी, वह अपनी पहले काम देने की शक्ति फिर वापिस पा जायगी, और आप फिर उसका उपयोग कर सकते हैं। तुम्हारे मनों

के भीतर तुम्हारा स्वर्गीय,ईश्वरीय निजात्मा है। प्रत्येक बच्चा स्वभाव से ही प्रेरित होता है। प्रत्येक बच्चा स्वभाव से ही कवि होता है। और यदि आप ईश्वरीय नियमों के अनुसार निर्वाह करें,ईश्वर की ताल से मिले हुए रहें,तो आप सदा प्रेरित हैं। यदि आप अपनी सच्ची आत्मा या स्वरूप से मिले हुए रहें, यदि आप अपने अन्तर्गत ईश्वर से, अपने निज स्वरूप या आत्मा से, सदा अपना संलग्न बनाये रक्खें, तो आप हर घड़ी प्रेरित हैं। आपमें कसर यही है कि आपका मन सब तरफ़ संसारी चुम्बकों,लौकिक संगों के संसर्ग में आता है, और वे आपको आकर्षित कर लेते हैं और आपको अव्यवस्थित कर देते हैं, तब आप कार्यकरी अवस्था में नहीं रह जाते हैं, गड़बड़ा जाते हैं। यदि आज आप प्रेरित नहीं हैं, तो एक मात्र कारण यही है कि आप अपने को यथेष्ट असंग या विच्छिन्न नहीं रखते। सांसारिक पदार्थों द्वारा आप अपने को आकर्षित होने देते हैं, मुग्ध होने देते हैं, आप अपने को उनके मनमाने खेल की वस्तु बन जाने देते हैं। यदि आप अपनी प्रारम्भिक शक्तियों और आवेश या प्रेरणा को फेरना चाहते हैं,तो कुछ देर के लिये अपनेको गतसंग रखिये,विच्छिन्न रखिये। वास्तविकता में,ईश्वरत्व में,ईश्वर में,सच्ची आत्मा में अपने को तोप लीजिये। स्ववृत्ति में, सत्य में अपने को गाड़ रखिये। कुछ काल के लिये अकेले रहिये,वास्तविकता के संस्पर्श में रहने के लिये अपने दिन का कुछ समय अलग कर लीजिये। ईश्वर में अपने आपको डुबा दीजिये,गाड़ लीजिये। यह कीजिये और आपको खींच लेनेवाली इन सांसारिक पदार्थों की विनाशक आकर्षण-शक्ति और मोह लेनेवाली अशुद्ध सम्मोहन-शक्ति छोड़ देगी, आपका मन पुनः कार्यकरी अवस्था में आ जायगा। आप फिर प्रेरित हो जायँगे।

कुछ दिनों तक समुद्र में चलते रहने पर जहाज़ गड़बड़ा जाते हैं, अव्यवस्थित हो जाते हैं। तब मरम्मत के लिये कुछ दिनों तक उन्हें जहाज़ों मरम्मतखाने में रखने की ज़रूरत पड़ती है। इसी तरह से बहुत समय तक सांसारिक मामलों में, सांसारिक झगड़ों में रहने से, मोहनेवाली परिस्थितियों के बीच में रहने से, बिगाड़नेवाली और थकानेवाली तथा निर्बल-कारिणी हालतों में रहने से आप अपने को बेसिलसिले कर लेते हैं, आप गिर जाते हैं, प्रेरणा की अपनी आन्तरिक स्वाभाविक शक्तियों को आप खो देते हैं। जिस तरह आप अपने जहाज़ों से बर्तते हैं वैसा ही व्यवहार आपको अपने शरीरों से करना चाहिए। अन्ततः कुछ समय के लिये अपने शरीरों को मरम्मतशाला में, पूर्वोक्त प्रभावों से दूर रखिये। कम से कम कुछ काल के लिये अपने शरीरों को स्ववृत्ति में रखिये। वे पुस्तकें पढ़िये जो आपको प्रेरित करेंगी, उन लोगों की संगति में रहिये जो निवेशित करेंगे। अपने आप एकाकी रहिये। कुछ समय ध्यान में लगाइये और आप अपनी प्रेरणा की शक्ति वापिस पायेंगे। क्या आपके शरीर को रोज़ धोने की ज़रूरत नहीं होती, क्या आपके घर को नित्य साफ़ किये और झाड़े जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती? इसी तरह से आपके मन की भी सफ़ाई और पोताई की ज़रूरत है, उसके नित्य धोये और नहलाये जाने की ज़रूरत है। जब तक लौकिक भावनायें, लौकिक संग या सांसारिक भोग के विचार या "मैं यह कर रहा हूँ" इत्यादि के विचार वर्तमान हैं, जब तक आप बिलकुल बलिदान नहीं हो जाते, तब तक आपके लिये कोई आशा नहीं है। शरीरोत्सर्ग के सिवाय प्रेरणा का कोई दूसरा उपाय नहीं है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सब इच्छाओं की पूर्ति का मार्ग।

(ता० १२ दिसम्बर १९०२ को साधु-संग (हर्मिटिक ब्रदरहुड) के सामने दिया हुआ स्वामी राम का व्याख्यान।)

इन नाना रूपों में मेरे निजात्मन्,

विषय शुरू करने के पहिले भारत की भौतिक दीनता पर कुछ शब्द कहे जायँगे। शायद एक समय ऐसा था जब भारत आज कल के सम्पूर्ण यूरोप से भी अधिक धनवान् था। आज कल समग्र अमेरिका में जितने रत्न, हीरे, मोती और लाल हैं उनकी अपेक्षा भारत में अधिक थे, ऐसा एक समय था। समय समय पर राष्ट्र के बाद राष्ट्र ने भारत को धर दबोचा। यूनान भारत की बदौलत अमीर हुआ, ईरान भारत की बदौलत अमीर हुआ, अफ़ग़ानिस्तान भारत की बदौलत अमीर हुआ, और आज इँगलैंड भारत की बदौलत दौलत बटोर रहा है। भारत वास्तव में किसी समय सोने और रत्नों का भांडार था।

हमें पछतावा नहीं है। भौतिक वैभव में भारत के पिछड़े होने का हमें खेद नहीं है। हम जानते हैं कि एक नियम है, ईश्वरीय नियम है, हमारी अपनी प्रकृति का नियम है, जो मामलों का नियमन कर रहा है, जिसके अनुसार प्रत्येक बात हो रही है। हम जानते हैं कि दैवी हाथ हमारे मामलों का सञ्चालन और नेतृत्व कर रहा है, और यह जानकर हम अपनी भौतिक दरिद्रता के लिये व्याकुल नहीं होते। भौतिक सम्पत्ति की हानि के लिये हमें सोच नहीं। इन वस्तुओं की, वैभव के इन भौतिक पदार्थों की, इन सब की परीक्षा हुई थी; भारतवासियों द्वारा ये तराजू में तौले गये

थे और कम पाये गये। अमेरिका अभी बिलकुल नौजवान है, अत्यन्त बालक है, बल्कि बच्चा है। इसी तरह यूरोप भी बिलकुल नौजवान है। भारत ने भौतिक क्षेत्र में प्रयोग किये हैं, इन सब चीज़ों को तौला है और कम पाया है। भारत इन्हें फेन का एक बूँद मात्र समझता है, और कुछ नहीं। वे आपके सुख के कोई साधन नहीं। वे आपको सच-मुच सुखी नहीं बना सकते, कदापि नहीं, कदापि नहीं। लोहा और सोना खरीदने के ही लिये ठीक हैं, बस। सुख इन भौतिक पदार्थों की ही जाति की वस्तु नहीं है। वह खरीदा नहीं जा सकता। सुख, सच्चा आनन्द इन चीज़ों से नहीं मोल लिया जा सकता।

सुख का रहस्य कुछ और ही है। रहस्य यह है कि जितना ही तुम चीज़ों को ढूँढ़ते हो उतना ही तुम उन्हें खोते हो। जितना ही आप कामना से परे रहते हैं उतना ही आप अपने को अभाव से भी परे पाते हैं, उतना ही भौतिक पदार्थ आपका पीछा करते हैं। आज कल के भारतवासी भी, सांसारिक बुद्धिवाले भारतवासी भी इस रहस्य को नहीं जानते, और तीक्ष्ण तथा गम्भीर निरीक्षण के अभाव के कारण वे किसी अपूर्व घटना का कारण ऐसी बातों को मानते हैं जो उसका वास्तविक कारण नहीं। भारत का राजनैतिक पतन क्यों हुआ, अथवा भौतिक दृष्टि से भारत इतना नीचा क्यों है? कारण यही है कि आज कल के भारतीय उन दिनों के भारतीय हैं जब भारत का पतन शुरू हुआ था। उनमें व्यावहारिक वेदान्त का अभाव है। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि वही भारत जो वेदान्त और आध्यात्मिकता का घर था, एकता का मूलस्रोत था, 'सब एक है' की भावना का मूल-

स्थान था, वही भारत, वही यंक जिससे दैवी ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान, आत्म-सम्मान, आत्म-ज्ञान, आत्म-गौरव की गंगा वही थी, वही भारत आज व्यावहारिक वेदान्त से हीन है। और यही भारत के पतन का कारण था.आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा, परन्तु अब इस विषय की आलोचना करने के लिये समय नहीं है। यदि समय मिला तो किसी भावी व्याख्यान में इस पर विचार किया जायगा। राष्ट्र क्यों गिरते और उठते हैं, बाह्य दृश्यों की आड़ में कौन सी ऐसी वस्तु है जो एक क़ौम को गिराती और दूसरी को उठाती है, कौन सा चन्द्र राष्ट्रों के ज्वार-भाटे का कारण होता है?

इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि विना आध्यात्मिक पतन के किसी राष्ट्र का किसी भी दृष्टि से पतन नहीं हो सकता—और एक भारतीय के मुख से,जिसने भारत तथा अन्य राष्ट्रों पर मनन किया है, निकले हुए इन शब्दों का आप स्वागत करेंगे। इस कथन में शायद अन्य भारतीय राम से सहमत न होंगे, किन्तु राम अपने ही प्रमाण पर, तीक्ष्ण अवलोकन के प्रमाण पर यह बात कहता है। यह क्या बात है कि अमेरिका इस समय तेज़ी से आगे बढ़ रहा है और विलक्षण उन्नति कर रहा है? भौतिक उन्नति की दृष्टि से अमेरिका इतनी शीघ्रता से क्यों अग्रसर हो रहा है? कारण यही है कि अमेरिकानिवासी अज्ञात भाव से इस स्थूल लोक में वेदान्त का जीवन बिता रहे हैं। अमेरिकावासी क्योंकर व्यावहारिक रूप से वेदान्त की ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं, और वह उनकी भौतिक उन्नति का कारण क्यों है, इस पर कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। परन्तु बात यही है। सत्य, सत्य, केवल सत्य गौरव पावेगा। वास्तविकता, वास्तविक चरित्र,

केवल स्वच्छ चरित्र को गौरव और सफलता प्राप्त होगी। और कोई इसे न पावेगा।

सब ब्यौरे को छोड़कर और सच्चे परन्तु प्रकट में विपरीत कथन पर टीका-टिप्पणी करना छोड़कर, जो कौतूहल-जनक बातें हमने अभी कही हैं उन पर और विचार न करके अब हमें आज के विषय पर आना चाहिये।

इंजील में लिखा है "माँगो और तुम उसे पाओगे; खटखटाओ और दरवाज़ा तुम्हारे लिये खुल जायगा।" उधर हिन्दू कर्म-वाद का उपदेश देते हैं, जिसका अर्थ है कि मानो प्रत्येक कामना अपनी पूर्ति अपने साथ लिये रहती है, प्रत्येक अभिलाषा और प्रत्येक संकल्प किसी न किसी समय पूर्ण होने का वचन देता है, पूर्ण होहीगा। राम इस विषय पर व्याख्यान न देगा। इस समय इसकी चर्चा ही यथेष्ट होगी। कहा जाता है कि बाग में दिखाई पड़नेवाली हरेक कली अपनी आशा पूर्ण हुई देखती है, कभी न कभी खिलती और फूलती है। और हीनतर पशुओं की बँधाई हुई सब उम्मेदें भी कार्य में परिणत होती हैं। इस संसार में कोई भी उद्योग, कोई भी शक्ति, कोई भी पदार्थ व्यर्थ नहीं जाता, कोई भी चीज़ खोती नहीं। शक्ति के आग्रह, उद्योग के संरक्षण, पदार्थ के अविनाशीपन के नियम हम लिपिबद्ध पाते हैं और इसी तरह मानसिक क्रियाशीलता तथा मानसिक कामनायें, संकल्प और अभिलाप अर्थात् मानसिक उद्योग-शक्ति है, इसका भी नाश कैसे हो सकता है? इसमें यह भी फल लगेंहीगे, देर या सबेर इसकी भी पूर्ति होगी। इस तरह सब आकांक्षायें पूर्ण होंहीगी। कर्म-वाद का सार और संकलन यही है। हिन्दू उपदेश देते हैं कि इस नियम के अनुसार "माँगिये और आप

उसे पावेंगे, खटखटाओ और दरवाज़ा तुम्हारे लिये खुल जायगा।" किन्तु क्या सचमुच ऐसा ही है? क्या वस्तुतः ऐसा ही है? अपने दैनिक जीवन में क्या हमें ऐसा ही अनुभव होता है? है तो ऐसा ही। परन्तु कर्म-वाद का साधारणतः जो अर्थ लोग लगाते हैं उसके अनुसार होनेवाले अपने अनुभव से यदि आप इसे सिद्ध करना चाहते हैं, साधारण लोग "माँगिये और आप उसे पावेंगे, खटखटाइये और वह आपके लिये खुल जायगा" से जो अर्थ ग्रहण करते हैं उस ढंग से यदि आप इस वक्तव्य को प्रमाणित करना चाहें तो आप भूल करेंगे। आप अपने को हानि में पावेंगे। आप देखेंगे कि यह काम नहीं देता; यह सिद्धान्त व्यवहार में काम नहीं करता। यह कथन पूर्ण सत्य नहीं है, यह सत्य का एक अंश मात्र है। बाइबिल में या हिन्दुओं द्वारा जब यह कहा गया था कि "खटखटाइये और वह आपके लिये खुल जायगा, माँगिये और वह तुम्हें मिल जायगा" तब इससे जो अर्थ ग्रहण किया जाता था वह साधारण लोग नहीं समझते या उसकी उपेक्षा करते हैं। मतलब यह था कि आपको उसकी क़ीमत भी देना होगी। उसका मूल्य भी देना पड़ेगा। यह मत भूलो कि मूल्य भी अत्यन्त ज़रूरी है। मूल्य की भी चर्चा हम इंजील में पाते हैं, "जो अपना जीवन बचायेगा वह इसे खो देगा।" इसका अर्थ क्या है? इसमें यह गर्भित है कि जो विनय करेगा और तलफेगा तथा आकांक्षा करेगा वह इसे नहीं पावेगा। तलफने में, विनय और आकांक्षा करने में हम अपने जीवन को रखना चाहते हैं। "जो अपने जीवन को रक्खेगा वह इसे खो देगा।"

"मनुष्य का जीवन केवल अन्नाधीन न होना चाहिये।"

यह देखिये, प्रभु की प्रार्थना में हम कहते हैं, "आज के दिन हमें हमारी नित्य की रोटी दीजिये"। "आज के दिन हमें हमारी नित्य की रोटी दीजिये", इस वाक्य में हम कहते हैं कि मनुष्य का जीवन केवल अन्नाधीन न होना चाहिये। इन कथनों की सङ्गति बैठाइये। उन्हें अच्छी तरह समझिये। "हमें हमारा नित्य का भोजन दीजिये", इस ईश-विनय का यह अर्थ नहीं है कि आप माँगते रहें। इसका यह मतलब नहीं कि आप अनुनय-विनय करें, अभिलाषा, आकांक्षा करें। कदापि नहीं। यह अर्थ नहीं है। इसका अभिप्राय यह था कि एक महाराज, एक सम्राट् को भी, जिसे नित्य का भोजन न मिलने का ज़रा सा भी खटका नहीं है, यह प्रार्थना करनी चाहिये; एक राजकुमार को भी, जिसे नित्य का भोजन अवश्यमेव मिलने का पूरा विश्वास है, यह प्रार्थना करनी ही चाहिये। यदि ऐसा है तो प्रकट है कि "हमारा नित्य का भोजन हमें दीजिये" का अर्थ यह नहीं है कि लोग मँगनपन धारण करें, वे भौतिक समृद्धि की अभिलाषा करें। यह अर्थ नहीं है। प्रार्थना का अर्थ यही है कि हरेक को, वह राजकुमार या महाराज या साधु कोई भी क्यों न हो, अपने इर्द-गिर्द की सब वस्तुयें, विपुल धन-राशि, समस्त दौलत, सुन्दर और मनोहर पदार्थ अपने न समझना चाहिये, वह इन सब (धन-दौलत आदि) को अपनी मिलकियत न माने, बल्कि समझे कि यह सर्वस्व ईश्वर का है, ईश्वर का, मेरा नहीं है, मेरा नहीं है। इस प्रार्थना का अर्थ माँगना नहीं है, अर्थ है त्यागना। सुनिये। "हमारा नित्य का भोजन हमें दीजिये" का अर्थ माँगना और चाहना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ त्यागना और दे देना है। दे देना, ईश्वरार्पण करना उक्त प्रार्थना का अर्थ था। आप समझ सकते हैं कि किसी बादशाह का यह "आज के

दिन हमें दीजिये इत्यादि" प्रार्थना करना कितना अनुचित है, यदि प्रार्थना का साधारण अर्थ ग्रहण किया जाय। कितना अयुक्त है! यह प्रार्थना तभी सङ्गत होती है जब महाराज इस भाव से प्रार्थना करें कि अपने कोष के सब रत्न, अपने घर की सारी दौलत, घर तक. मैं त्याग करता हूँ, मानों यह सब कुछ ईश्वरार्पण करता हूँ, मानों अपने सर्वस्व पर से अपना अधिकार हटाता हूँ। यह कहा जा सकता है कि उन सब वस्तुओं से वह अपना सम्बन्ध तोड़ता है और उनसे दूर खड़ा हो जाता है। वह सर्वश्रेष्ठ साधु है। वह कहता है, यह ईश्वर का है। मेज़, मेज़ पर रक्खी हुई सब चीज़ें उस (ईश्वर) की हैं, मेरी नहीं; मेरा कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी मिलता है, सब प्यारे (ईश्वर) से मिलता है। प्रार्थना द्वारा वह यही अनुभव करता है। "आज मुझे दीजिये इत्यादि" का राम द्वारा अभी समझाया हुआ अर्थ यदि आप ग्रहण करें तो आप इसे "मनुष्य का जीवन केवल अन्नाधीन न होना चाहिये" से संगत पाइयेगा; तब तो आप दोनों वचनों में संगति पावेंगे, अन्यथा असंगति।

इंजील में हम यह भी पाते हैं कि "स्वर्ग का साम्राज्य तलाश करो, और अन्य सब चीज़ें तुम्हें मिल जायँगी"। यही कुंजी है। यह प्रार्थना की कुंजी है। "पहले स्वर्ग का साम्राज्य ढूँढ़ो फिर अन्य सब चीज़ें आप ही मिल जायँगी", यही आश्वासन स्वामी ने प्रभु-प्रार्थना पर दिया था।

फिर है "रंज में उसे बच्चे का पोषण करना चाहिये"। खोई हुई कड़ी, पांचवा टुकड़ा इस वाक्य में मिलता है। बच्चा तो वह पोसेगी, किन्तु रंज उसका मूल्य है। इच्छाओं में फल लगेंगे, आप जो कुछ चाहते हैं वह सामने आवेगा,

आपकी जो कुछ अभिलाषा है उसकी पूर्ति होगी। परन्तु शोकरूपी मूल्य आपको देना होगा। "रंज में उसे बच्चे का पोषण करना चाहिये", यह केवल नारी के लिये नहीं कहा गया है। यह हरेक के लिये कहा गया है। इच्छायें फलवती होंगी, परन्तु क़ीमत देने पर। क़ीमत क्या है? रंज। इस रंज शब्द को भी व्याख्यान की अपेक्षा है। रंज का अर्थ है सब इच्छाओं का त्याग। कौन अपनी इच्छायें पूर्ण होती देखेगा? कौन? वह जो अपनी इच्छाओं में चिपटता है? वह जो दिलोजान से अपनी इच्छाओं के अधीन हो जाता है? नहीं नहीं जो मनुष्य मानों शाहाना ढंग से इच्छाओं का पोषण करता है, जो तटस्थता-पूर्वक, उदासीन भाव से इच्छाओं का पोषण करता है केवल वही अपनी अभिलाषाओं को फलते-फूलते देखेगा।

लोग कहते हैं कि प्रार्थनाओं का उत्तर मिलता है। प्रार्थनायें क्या चीज़ हैं? प्रार्थना शब्द का अर्थ माँगना, भिक्षा करना, इच्छा करना अभिलाषा और कामना करना। (कुछ लोग प्रार्थना शब्द का यही अर्थ लगाते हैं)। हैं प्रार्थना करने का अर्थ यह मानना चाहिये कि इच्छा करने, कामना करने, अभिलाषा करने, माँगने और चाहने से प्रार्थनायें सुनी जाती हैं। यह कथन ग़लत है। यदि प्रार्थना शब्द का अर्थ आप माँगना, चाहना, इच्छा करना, कामना करना समझते हैं तो कोई प्रार्थना कभी नहीं मंज़ूर होती। कोई चीज़ माँगने से कभी नहीं मिलती। भीख चाहने से कभी वस्तु नहीं हाथ आती। माँगते हो आप कुछ न पावेंगे। परन्तु प्रार्थना शब्द का साधारणतः कुछ और ही अर्थ है। वह क्या? प्रार्थना शब्द का अर्थ उस अवस्था में उठना है जिसमें

आप कामना से परे होंगे, जिसमें "तेरी मर्ज़ी पूरी हो" वाक्य से आपका स्वरैक्य होगा। सावधान! प्रार्थना का अर्थ माँगना। हाथ फैलाना, इच्छा करना तथा स्वेच्छा पूर्ण कराना नहीं है। प्रार्थना को लोग अपनी इच्छा पूर्ण होने का उपाय समझते हैं। आत्मा से वे क्षुद्र आत्मा, यह मंगता आत्मा समझते हैं। किंतु प्रार्थना का प्राण, प्रार्थना का सारांश इस वाक्य में है "तेरी मर्ज़ी पूरी हो"। जब शरीर सब प्रकार के क्लेशों के, सब तरह की पीड़ा और व्यथा के अधीन होता है तब भी आप के हृदय से, हृदयों के हृदय से यह विचार, या भावना कह लीजिये, उत्पन्न होता है, "तेरी इच्छा पूर्ण हो"। यह बहुत ठीक है। जब शरीर रोगी होता है, जब आपके इर्द-गिर्द की सब परिस्थिति आपके विपरीत होती है, आपका विरोध करती है, तब आपके भीतर से यह विचार उठ खड़ा होता है, "तेरी इच्छा पूर्ण हो", मेरी नहीं। यही समर्पण है, यही आत्म-त्याग है, तुच्छ आत्मा का उत्सर्ग है। प्रार्थनाओं का, हृदय से निकली हुई प्रार्थनाओं का यही मर्म है, यही तत्त्व है, यही आत्मा है। जिन प्रार्थनाओं का अन्त केवल स्वार्थ-पूर्ण कामनाओं में होता है उन प्रार्थनाओं की सुनवाई कभी नहीं होती, कभी नहीं होती। प्रार्थनायें तभी सुनी जाती हैं जब चित्त ऐसी दशा में पहुँच जाता है जिसमें संसार संसार नहीं रह जाता, जिसमें पूर्ण उत्सर्ग हो जाता है और शरीर शरीर नहीं रह जाता, चित्त चित्त नहीं रह जाता, सम्बन्धी पीछे छूट जाते हैं, सब सम्पर्क भूल जाते हैं। और जब आपका चित्त ऐसी अलौकिक चैतन्यता कुछ समय के लिये, एक क्षण के लिये भी, प्राप्त करता है तब प्रार्थनायें सुनी जाती हैं। और उसके बाद, उस अवस्था से ठीक जागते ही, नहीं, उस अवस्था के बाद ठीक सोते ही, उस दशा से ठीक नीचे उत-

रते हों, यदि आपके सामने कोई अभिलाषा आ खड़ी होती है तो वह पूरी होती ही है। इस तरह की प्रार्थनायें तभी सुनी जाती हैं जब कोई एक खास तल पर चढ़ जाता है, पूर्ण देह-विस्मृति, तुच्छ आत्मा के पूर्ण संयम, सब वस्तुओं के पूर्ण त्याग, संसार से पूर्ण वैराग्य, पूर्ण ब्रह्मार्पण, पूर्ण उत्सर्ग की उच्चता पर पहुँच जाता है। परन्तु ये प्रार्थनायें माँगने-वाली नहीं कही जा सकतीं। इन्हें भिक्षाशील प्रार्थनायें नहीं कहना चाहिए।

पुनः कुछ लोग ऐसे हैं जो साधारण रीति से नहीं प्रार्थना करते, जो किसी बँधे रूप में प्रार्थनायें नहीं करते, और उनकी कामनायें पूर्ण होती हैं, उनकी इच्छायें पूरी होती हैं। क्योंकर, और ये किस तरह के लोग हैं? ये लोग किस तरह के हैं? वे किसके समान हैं? अभी देखिये। आपको कोई इच्छा है, और आप इच्छा, अभिलाषा, अनुनय-विनय, कामना करते जाते हैं, छटपटाते रहते हैं। जब तक आपका यह मँगतेपन का ढंग रहता है, आपको कुछ नहीं मिलता। आप जानते हैं कि यदि हमको किसी बड़े आदमी के पास जाना होता है तो हम उसके पास अच्छी पोशाक पहनकर जाते हैं। ईश्वर सब से बड़ा है, सर्वोच्च है, निष्काम है, सब अभावों से परे है। यदि आप उसके पास जाते हैं तो सुन्दर वस्त्र धारण करके जाइये, ऐसी पोशाक पहनिये जो उसके अनुरूप हो, जो उस मनुष्य के योग्य हो जिसे सकल अभावों से परे महापुरुष के पास जाना है। तुमको भी अभाव से परे होना चाहिए। तुम्हें भी मँगतेपन से दूर होना चाहिए, तुम्हें भी टुटपुँजिये दूकानदार या भिखारी के चिथड़े न लादना चाहिए। कोई भी भिखारी को पसन्द नहीं करता।

मँगता दुतकार दिया जाता है। लोग उसकी उपस्थिति से घृणा करते हैं। इस देश में यों भिखारी और टुकड़ैल नहीं पूछे जाते, उनके लिये कोई जगह नहीं है। इसलिये तुम्हें यदि ईश्वर के पास पहुँचना है तो ईश्वरोचित पोशाक में जाइये। ईश्वरोचित पोशाक क्या है? वह पोशाक जिसमें भिखारी की गंध नहीं है, जिससे आवश्यकता या अभाव नहीं टपकता। तुम्हें अपने आपको आवश्यकता या अभाव से दूर समझना चाहिए। तब ईश्वर द्वारा आपका स्वागत होगा, केवल तभी।

कहा जाता है कि जो मनुष्य छटपटा रहा है, अभिलाषा कर रहा है, इच्छा कर रहा है, जो बेचैनी की हालत में है, जो अभाव बोध करता है, जो निरानन्द और आवश्यकता की दशा में है, उसके पास सुख नहीं आ सकता। जब तक आप तलफते हैं, अभिलाषा करते हैं, इच्छा करते हैं, तब तक आप बेचैनी की हालत में रहते हैं, आप दुःख की दशा में रहते हैं। इस अवस्था में किसी इच्छा की पूर्ति-रूप आनन्द, या यों कह लीजिये, वह इच्छित पदार्थ, जो आपकी दृष्टि में सुख से परिपूर्ण है, आपके पास न फटकेगा। दोनों में विरोध है। तुम्हारी आत्मा भिक्षा-शील है, कंगाल है, वह काम्य पदार्थ उच्च है, प्रतापी है, सुखमय है। दोनों में विरोध है। वह पदार्थ तुम्हारे निकट न आवेगा। तुम उस पदार्थ की ओर खिंचोगे, उसे ढूँढ़ते फिरोगे, और वह तुमसे हमेशा घृणा करेगा। कुछ काल तक निरुत्साहित किये जाने पर, कुछ काल तक असफलता से व्यथित होने पर, सफलता न पाने के बाद, कुछ समय तक वह पदार्थ न पाने के बाद, जब तुम उस पदार्थ की ओर से मुँह फेर लोगे, जब तुम उस पदार्थ की

ओर से हताश हो जाओगे तब उसे छोड़ दोगे, तब उसका पीछा छोड़ दोगे और मन मारकर बैठ रहोगे। ज्योंही तुम अपना मुख उसकी ओर से फेरोगे, उसे छोड़ बैठोगे, त्योंही तुम उससे ऊपर उठ जाते हो, उसी क्षण तुम अपने को उस पदार्थ से ऊँची श्रेणी में पहुँचा देते हो। इधर तुम उस पदार्थ से ऊँचे उठे उधर वह पदार्थ तुम्हें ढूँढ़ने लगेगा। क्या ऐसा नहीं है? हरेक व्यक्ति को यह अनुभव से ज्ञात है। केवल अपने अनुभव की शरण लो, और हर कामना में तुम्हें इस तरह का अनुभव हुआ है। जब आप किसी व्यक्ति पर प्रेम करते हैं और उसके लिये विकल होते हैं, उसके लिये भूखे रहते हैं, प्यासे रहते हैं, तब आप उसके लिये बहुत उत्सुक होते हैं, और, बहुत ही उत्सुक होते हैं। जब आप उसे किसी उच्चतर भाव के लिये, जो भाव मुझ और तुझसे ऊपर उठ जायगा, छोड़ और भुला दें तब, केवल तभी, आप उस इच्छित वस्तु को अपनी बग़ल में पावेंगे, तभी वह पदार्थ आपको अपने पास मिलेगा।

यह क्या बात है? आप देखते हैं कि हरेक वस्तु अपनी सी वस्तु को आकर्षित करती है। यही बात है। सूर्य भी पदार्थ है और भूमि भी पदार्थ है। सूर्य भूमि को और सब ग्रहों को खींचता है। पृथिवी सूर्य को अपनी ओर नहीं खींचती, वह सूर्य द्वारा खींची जाती है। सूर्य पृथिवी को अपनी तरफ़ खींचता है। धनात्मक [positive] और ऋणात्मक [negative] बिजलियों में भी यही बात है। उनमें अंशों का भेद है, जाति का भेद नहीं है। विज्ञान इसे सिद्ध करता है। यहाँ एक चुम्बक पत्थर है और एक लोहे का टुकड़ा है। जो चीज़ भारी है वह हलकी को खींच लेगी, यह विज्ञान का भली भाँति प्रसिद्ध नियम है।

जब तुम उद्दिष्ट को छोड़ देते हो तब भी ऐसा ही होता है। तुम अपनी उद्दिष्ट वस्तु को छोड़ और खो देते हो। तुम एक ऐसे भाव या हृदयोद्वेग में उठ आते हो जो अभावहीनता का आवेग है, जो आवश्यकता से, कामना से ऊपर है, जो निष्कामता का भाव है, जो निष्कामता है। तुम एक उच्चतर कक्षा में हो, और तुम सूर्य हो, और तब वह आनन्द अथवा वह वस्तु पृथिवी या कोई दूसरा ग्रह मात्र हो जाती है और तुम उसे अपने पास खींच लेते हो, वह तुम्हारे पास आ जाता है।

जब तुम्हारी कामना का पदार्थ तुम्हारे पास आ जाता है तब फिर तुम कुछ दर्प से भर जाते हो। पुनः तुम अपने को आवश्यकता में बोध करने लगते हो और पुनः खटपट भी हो जाती है। यही धंधा होता रहता है। तुम राज सिंहासन पर पहुँच जाते हो, और दूसरे सब लोग तो अब तुम्हें देखे होंगे, क्योंकि सब प्रजा, सब दरबारी, सब पदाधिकारी नरेश की ओर खिंच ही जाते हैं। वे महाराज को ढूँढ़ते हैं, वे उससे मुलाक़ात करना चाहते हैं, वे वे बुलाये भी उसकी हाज़िरी भरते हैं। जब तुम अपने को कामना, अभाव, आवश्यकता से ऊपर समझते हो तब यही होता है। तुम राजा के सिंहासन के अधिकारी होते हो, और ये सब वस्तुयें, ये कामनायें, दरबारियों और कर्मचारियों के समान होने के कारण तुम्हें ढूँढ़ती हैं, तुमसे भेंट करना चाहती हैं, तुम्हारे दरबार में हाज़िर हो जाती हैं। तब क्या होता है? इस अवर्णनीय दशा में रहने के बाद, जो दशा केवल उसी पारलौकिक दशा में व्यक्त की जा सकती है, साधारणतः लोग रुचिर, मनोहर वस्तुओं को अपनी ओर खिंचा हुआ पाते हैं।

और जब वे वस्तुयें उनके पास पहुँच जाती हैं तब वे अपना सिंहासन त्यागकर नीचे उतर आते हैं और अपने आप को अभाव या आवश्यकता से हैरान होते पाते हैं। वे फिर अपने को नीची श्रेणी में रख लेते हैं और कामना की वस्तु उन्हें छोड़ देती है। यही होता है। इसकी दूसरी तरह से भी व्याख्या की जा सकती है।

एक गाड़ी में एक दरवाज़ा है और एक मनुष्य दरवाज़े में खड़ा है। वह अपने मित्र को बुलाता है, "आ जाओ, चले आओ"। जब मित्र आता है तब अति चिन्ता के कारण वह दरवाज़ेवाला मनुष्य दरवाज़ा नहीं ख़ाली करता, वहीं खड़ा रहता है। मित्र आवे तो कहाँ? वह मित्र के लिये कोई जगह नहीं देता, मित्र उसके पास नहीं आ सकता। गाड़ी चल देती है, और वह बिना मित्र के रह जाता है। ठीक ऐसा, ठीक ऐसा ही है।

तुम्हारी एक कामना है, तुम अभिलाषा या मिन्नत करते हो। कामना बड़ी प्रबल, अति गम्भीर है। इच्छा करके तुम काम्य वस्तु को आमंत्रित कर रहे हो। वह आती है और चिन्ता में पड़े हुए तुम उसके लिये द्वार नहीं खाली करते। तुम दरवाज़ा रोके रहते हो, तुम उसको जगह नहीं देते। तुम्हारी हानि होती है, तुम्हारी हानि होती है। तुम केवल माँग रहे थे, और वह तुम्हें नहीं मिली। किन्तु माँगने, हाथ फैलाने और इच्छा करने के बाद तुम्हें दरवाज़ा खाली करना पड़ेगा, तुम्हें वह स्थान छोड़ना पड़ेगा और भीतर जाना पड़ेगा। भीतर लौटो, और तब मित्र भीतर आवेगा, भीतर पधारेगा, और मित्र को तुम अपने पास पाओगे। यही हाल है।

कल्पना करो कि तुम्हें कोई कामना, अभिलाषा या इच्छा अथवा इस तरह की कोई भी प्रवृत्ति है। तुम इच्छा करते रहते हो। इच्छित वस्तु तुम्हारी ओर खिंच आती है। परन्तु जब तक इच्छा से ऊपर न उठोगे, अपने भीतर न प्रवेश करोगे, तब तक वह तुम्हें कदापि न मिलेगी; क्योंकि उस मनुष्य (इच्छित वस्तु) को गाड़ी में घुसना है। तुम अब अपने भीतर प्रवेश करो, वास्तविक स्वयं के पास पहुँचो। इस तरह स्थान खाली कर देने या रोके रहने पर इच्छित वस्तु मिलती या नहीं मिलती है।

इस स्थान की हवा सूर्य-ताप से गरम हो गई है, वह ऊपर चढ़ जायगी। खाली जगह को भरने के लिये बाहर की हवा भीतर धँस आवेगी। यदि हवा अपनी जगह पर डटी रहती है तो बाहर की हवा आकर उसका स्थान नहीं ले पाती।

ठीक ऐसे ही जब तक आप इच्छाओं और क्षुद्र स्वयं को, तथा इच्छा और अभिलाषावाली दशा को बनाये रखते हैं तब तक चाही हुई वस्तुयें आपकी ओर नहीं झपटतीं। उन इच्छाओं को छोड़ दो। पहले माँगने से, तुम चाहे विनती भी करो, काम न निकलेगा। बाद को आपको माँगने और इच्छा करने से ऊपर उठना होगा, इच्छाओं से पल्ला छुड़ाकर तुम्हें आगे बढ़ना होगा, तब वे पूरी होंगी।

ऐसे लोग हैं जिनकी इच्छायें, जिनकी आज्ञायें वा आदेश सूर्य को, चन्द्र को, (पञ्च) तत्त्वों को पालना पड़ते हैं। उनकी शक्ति और महिमा का भेद क्या है? क्या रहस्य है? भेद केवल यही है कि उनकी कामनायें व्यक्तिगत और स्वार्थपूर्ण कामनायें नहीं होतीं। उनकी इच्छायें एक नरेन्द्र के वचनों के समान होती हैं, जो (नरेन्द्र) समस्त आवश्य-

कताओं से ऊपर होता है—और ध्यान दीजिये—जिसे वास्तव में किसी चीज़ का भी अभाव नहीं होता है, जो केवल खुशी के लिये एक वाक्य बोल देता है या कुछ कह देता है। यदि उसके कहने के अनुसार काम हुआ तो अच्छा, यदि न हुआ तो अच्छा। वह सब अभिलाषाओं से परे है। एक बादशाह, जिसे कोई इच्छा नहीं, किसी से कुछ नहीं चाहता। परन्तु उसके दरबारी और परिजन उसकी आज्ञा पाकर धन्य होते हैं। उसे स्वयं तो कोई इच्छा नहीं है परन्तु केवल अपने मित्रों को खुश करने के अभिप्राय से, अपने को खुश करने के लिये नहीं, उनसे अपना कोई काम करने को कह देता है। वह अपने भीतर ही भीतर परम प्रसन्न और संतुष्ट है।

राजाओं और राजकुमारों की भाँति जो लोग सब इच्छाओं से परे रहते हैं, केवल उन्हीं की आज्ञायें इस संसार में चन्द्र, सूर्य और तत्वों द्वारा पाली जाती हैं। वे कामनाओं से परे होते हैं और उनकी कामनायें पूर्ण होती हैं। इच्छाओं की पूर्त्ति की यही कुंजी है।

इस संसार में सूर्य सब कुछ करता है। परन्तु उसके द्वारा सब कुछ क्योंकर होता है? यह क्या बात है? कारण यही है कि सूर्य साक्षी मात्र है, केवल गवाह है। और एक महिमान्वित गवाह महाराजाधिराज के तुल्य है। यदि कोई राजा या राजकुमार यहाँ आ पड़े तो उसे तुमसे कोई वस्तु माँगनी न पड़ेगी, हरेक व्यक्ति अपनी ही इच्छा से उसके लिये जगह कर देगा, उसे आसन, जल, भोजन अथवा और कोई वस्तु देगा, धन और दूसरी चीज़ें उसे अर्पण करेगा। अपनी ही इच्छा से अर्पण करेगा। ठीक इसी तरह जो कुछ तुम देखते हो सब सूर्य करता है। जो कुछ तुम देखते हो सब सूर्य के द्वारा देखते हो।

यदि सूर्य न होता तो हवा में ठिठुरन आ जाती और वह गतिशून्य हो जाती और कोई शब्द तुम्हारे कानों में न पहुँच सकता। सूर्य के ताप का ही यह परिणाम है कि तुम स्वाद का सुख भोगते हो। सूर्य की ही गरमी शाक, भाजी पैदा करती है। जो कुछ तुम सूँघते हो उसका भी कारण सूर्य ही है। पृथिवी अपने वर्तमान रूप में सूर्य ही के कारण ठहरी हुई है। सब बातों का कारण सूर्य ही है, फिर भी किसी अदालत में सूर्य के विरुद्ध कोई शिकायत कभी नहीं दायर हुई। सूर्य के कारण चोर सब कुछ चुराता है, परन्तु किसी न्यायालय में सूर्य पर कभी कोई मुक़द्मा नहीं चलाया गया।

सूर्य, साक्षी, गवाह, निष्पक्ष गवाह है, सूर्यदेव अपनी महिमा से मण्डित तटस्थ साक्षी हैं। इसी से पृथ्वी चक्कर पर चक्कर काटती हुई अपने सब भाग सूर्य को दिखाती है। ग्रह उसके इर्द-गिर्द फिरा करते हैं और अपने सब अंग सूर्य को दिखाते रहते हैं। इसी से सूर्य के प्रकट होते ही हिमालियों से पानी बहने लगता है। सूर्य की मौजूदगी में हवा भी चलती रहती है, घास बढ़ती रहती है, इत्यादि। अतएव, सूर्य की उपस्थिति में हरेक चीज़ आती और जाती है। यह क्या बात है? बात यही है कि सूर्य गवाह की, निष्पक्ष गवाह की स्थिति में है, वह अपने द्वारा होती रहनेवाली बातों में हिलमिल नहीं जाता अथवा उन वस्तुओं के साथ भ्रमण नहीं करता, वह प्रतापी साक्षी मात्र रहता है। वेदान्त कहता है, संसार में घूमते-फिरते समय क्या आप खुद उस स्थिति में, अपनी महिमा से मण्डित गवाह की स्थिति में, निष्पक्ष संग की दशा में नहीं हो सकते? संसार में कोई व्यक्ति गत,

स्वार्थपूर्ण अनुराग न रखिये, केवल सूर्यवाला स्वार्थ रखिये। जहाँ कहीं जाइये वहाँ जीवन और प्रभा फैलाइये, किसी प्रकार का व्यक्तिगत अनुराग न रखिये, ईश्वरीय चैतन्यता के ईश्वरात्मकता के सच्चे गौरव में—'वही मैं हूँ'—अपने को रखिये। तुच्छ स्वार्थपूर्ण अनुरागी अहं के दृष्टि विन्दु से किसी चीज़ की ओर न देखते हुए, सत्य के घर में, आत्मा के वास्तविक आत्मा में अपने को रखिये। यदि आप ऐसा करें तो आप अपने को वही परम शक्ति पावेंगे जिसकी आज्ञायें इस संसार की सब शक्तियों को पालना पड़ती हैं।

इस संसार की सब मुसीबतों, क्लेशों, सुखों, वैभवों, सम्पदाओं और विकट ग़रीबी तथा हीनताओं को अपने ऊपर उतनी ही कोमलता और पूर्णता से पड़ने दीजिये जितनी स्निग्धता और पूर्णता से कोई मनोहर भूभाग आपके दृष्टिपथ में पड़ता है। भूभाग का दृश्य जब आपकी दृष्टि से गुज़रता है तब आप प्रत्येक वस्तु साफ़ साफ़ परन्तु कोमलता से देखते हैं। उसका तुम पर कोई बोझ नहीं पड़ता, वह तुम्हारे नयनों में थकावट नहीं लाता। इस तरह इस दुनिया में रहो, इर्द-गिर्द भ्रमण करो, जीवन की गलियों में बेलुप हुए गुज़रो, साक्षी प्रकाश हरेक चीज़ स्पष्टता से परन्तु स्निग्धता से देखे, वह अति भाराक्रान्त न हो, किसी बात से दिक़ न हो। यदि यह आप कर सकें तो आप वह महात्मा हैं जिसके आदेश प्राकृतिक शक्तियों को मान्य होते हैं। तुम वही महात्मा हो।

इच्छाओं से ऊपर उठो, और वे पूरी हो जायँगी। कर्मवाद का प्रारब्धवाद या प्राकृतिक शक्तियों से, जो सम्पूर्ण विश्व के द्वारा कार्य कर रही हैं, कैसे समन्वय किया जाय?

दूसरे शब्दों में भाग्यवाद या निर्बन्धवाद की स्वतंत्र संकल्प से कैसे संगति बैठे?

एक सादा उदाहरण दिया जायगा।

कहा जाता है कि जो इच्छायें आपके अन्दर हैं वे वास्तव में सचमुच अनायास इच्छायें नहीं हैं; परन्तु आपकी इच्छायें प्राकृतिक हैं और वे भविष्य में होनेवाली तथा प्रकृति के नियमित क्रम में घटनेवाली घटनाओं की प्रतिच्छाया मात्र हैं। वे पूर्व से ही आपके चित्त में अपनी छाया डालती हैं और इच्छाओं के रूप में प्रगट होती हैं।

एक कहानी है एक महिला की, जो एक प्रथम श्रेणी के चित्रकार के पास अपना छायाचित्र उतरवाने गई थी। तसवीर उतारनेवाले ने अपना यंत्र ठीक करके रक्खा और अत्यन्त सचेतन फलक का प्रयोग किया। जब उसने ख़ाके को जाँचा तो उसे महिला के चेहरे पर चेचक के चिह्न दिखाई पड़े। वह चकित हुआ। इसका क्या अर्थ? उसका मुखमण्डल तो स्वच्छ है परन्तु ख़ाके में उस भयङ्कर रोग के लक्षण अवश्य हैं। उसने अनेक बार महिला का ऐसा छायाचित्र लेने का यत्न किया जिसमें चेहरे पर शीतला के लक्षण न हों। अन्त में हैरान होकर उसने यत्न त्याग दिया और महिला से कहा कि किसी दूसरे दिन आइयेगा, जब अवस्था अनुकूल होगी और मैं आपका निर्दोष चित्र लेने में सफल हो सकूँगा। महिला अपने घर गई और कुछ घण्टों बाद उसके शीतला निकल आई। क्या कारण था? बाद को उसको याद पड़ा कि मेरी बहन की, जो चेचक से पीड़ित थी और मेरे यहाँ आनेवाली थी, एक चिट्ठी आई थी जिसके लिफ़ाफ़े को उसने अपने ओठों से गीला तथा उँगलियों से

बन्द किया था। उसी चिट्ठी को खोलने से उस महिला में रोग प्रवेश कर गया था और यथासमय वह रोगाक्रान्त हुई। तसवीर खींचनेवाले द्वारा काम में लाये जानेवाले परिष्कृत पदार्थों की कृपा से तसवीर उतारने के यंत्र ने उस (रोग) का पता लगा लिया, परन्तु यंत्रहीन नेत्रों को धोखा हुआ और चर्म में काम करती हुई चेचक नहीं दिखाई पड़ सकी।

इसी प्रकार इच्छायें भी वास्तव में चेचक के दाग हैं, जो चेहरे पर तो नहीं प्रगट हुए हैं परन्तु यंत्र से देखे जा सकते हैं। वास्तव में कामनायें अपनी पूर्ति की ज़मानत हैं। इच्छायें अवश्यमेव घटनेवाली घटनाओं की तालिका मात्र हैं।

ये सब चीज़ें जो हमारे हिस्से में पड़ती हैं, एक दृष्टि से हमारी परिस्थिति को, हमारी अवस्थाओं और बाहरी प्रभावों द्वारा निश्चित होती हैं। दूसरे दृष्टिबिन्दु से भीतरी सब इच्छायें हमें साधारणतः हमारे स्वतंत्र संकल्पों की करतूतें मालूम होती हैं और वे पूरी होकर रहेंगी। हम कहते हैं कि हम स्वतंत्र हैं और हमारा स्वतंत्र संकल्प अवश्य सफल होगा। इस प्रकार स्वतंत्र संकल्प और भाग्यवाद का समन्वय हो जाता है। इच्छायें वास्तव में पहले ही से पूर्ण हो चुकी हैं। परन्तु यह यातना क्यों और कैसी है? इच्छाओं की पूर्ति के लिये हमें यह मूल्य क्यों देना पड़ता है? यह भी ज़रूरी है। एक उदाहरण देकर यह समझाया जायगा।

एक मनुष्य अपने एक मित्र को पत्र लिख रहा था। उसे देखने को वह छटपटा रहा था और बहुत ही उत्सुक था। बहुत दिनों से उसने अपने मित्र को नहीं देखा था। बड़ी लम्बी चौड़ी चिट्ठी वह लिख रहा था, पन्ने पर पन्ने भरते चला जा रहा था। लिखने में वह इतना लिप्त था कि एक

क्षण के लिये भी वह न रुकता था और न आँख उठाता था। प्रायः पौन घण्टा उसने चिट्ठी लिखने में लगाया और इतने समय तक उसने सिर भी नहीं उठाया। जब पत्र पूरा हुआ और दस्तखत हो गये तब उसने मूड़ उठाया और देखा कि उसका प्रिय मित्र उसके सामने खड़ा है। वह उछल पड़ा और अपना स्नेह प्रकट करते हुए मित्र से लिपट गया। बाद को बिगड़कर बोला, "तुम यहाँ हो?" मित्र ने उत्तर दिया, "मुझे यहाँ आये आध घण्टे से अधिक हो गया।" तब उस मनुष्य ने कहा, "इतनी देर से यहाँ हो तो मुझसे कहा क्यों नहीं?" मित्र ने कहा, "तुम इतने मग्न थे कि मैंने तुम्हारे काम में विघ्न डालना उचित नहीं समझा।" यही गति है, यही गति है।

तुम्हारी इच्छायें चिट्ठी लिखने के समान हैं। तुम विनती कर रहे हो, इच्छा और अभिलाषा करते हो, भूखे हो रहे हो, प्यासे हो रहे हो, हैरान हो—यह सब चिट्ठी लिखना है, और तुम लिखते ही जाते हो। जिसे तुम चिट्ठी लिख रहे हो, जिन वस्तुओं में तुम्हारी लौ लगी हुई है, वे कर्मवाद के गुप्त नियम के अनुसार तुम्हारे सामने पहले ही से मौजूद हैं। किन्तु तुम्हें उनका पता क्यों नहीं चलता, अपने सामने तुम उन्हें क्यों नहीं पाते? क्योंकि तुम इच्छा कर रहे हो, चिट्ठी लिख रहे हो। यही कारण है। जिस क्षण तुम इच्छा करना छोड़ दोगे, पत्र लिखना बन्द कर दोगे, उसी क्षण सब इच्छित पदार्थों को अपने सामने देखोगे। इसीलिये मूल्य देना नितान्त आवश्यक हो जाता है।

इस विषय की दृष्टान्त-स्वरूप हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में सैकड़ों कहानियां हैं। एक राजा के प्रधान मंत्री की कथा है जिसने

लक्ष्मी के प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिये आवश्यक सब प्रकार के तप किये। उसने सब आवश्यक मंत्रों, यंत्रों और प्रयोगों की साधना की। लक्ष्मी देवी की प्रत्यक्ष उपस्थिति का अनुभव करानेवाले गुप्त मंत्रों को उसने दस लाख दफ़े जपा। देवी ने दर्शन नहीं दिये। तीस लाख बार सब प्रयोग उसने किये, फिर भी सिद्धि नहीं हुई।

मंत्र-यंत्र से उसका विश्वास जाता रहा और संसार की सब वस्तुओं को त्यागकर संन्यास ले लिया। ज्योंही उसने संन्यास लेकर अपना भवन छोड़ा और वन में कुटी बनाई त्योंही लक्ष्मी उसके सामने आ गई। उसने कहा, "देवी चली जाओ, अब तुम यहाँ क्यों आई हो? मुझे अब तुम्हारी ज़रूरत नहीं। मैं साधु हूँ। साधु को विलासिता, ऐश्वर्य, दौलत और सांसारिक भोगों से क्या मतलब? जब मुझे तुम्हारी चाह थी तब तो आई नहीं, अब जब मुझे तुम्हारी चाह नहीं, तुमने कृपा की है।" देवी ने उत्तर दिया, "तुम स्वयं मेरा रास्ता रोके थे। जब तक तुम मेरी इच्छा कर रहे थे तब तक तुम द्वैत का प्रतिपादन कर रहे थे, तब तक तुम अपने को भिखारी बनाये हुए थे, और ऐसे मनुष्य को कुछ भी नहीं मिल सकता। जिस क्षण तुम कामनाओं से परे हो जाते हो और उनका तिरस्कार कर देते हो उसी क्षण तुम देवता हो, और गौरव देवताओं के ही हिस्से की वस्तु है।" यह रहस्य है।

ॐ। ॐ!! ॐ!!!

कर्म ।

[ता० ५। १। १६०२ के रोज सोशल ऐसोसिएशन, मथुरा में दिया हुआ स्वामी राम का एक व्याख्यान]*

कुछ लोग कहते हैं कि सारे काम ईश्वर की इच्छा से होते हैं; कुछ कहते हैं नहीं, मनुष्य के प्रयत्न या पुरुषार्थ से होते हैं।

पूर्व-कथित महाशय इस मामले को इस तरह माने बैठे हैं कि जो कुछ काम होता है वह सब ईश्वर ही करता है और उसकी इच्छा से ही होते हैं; हमारा इसमें बिलकुल कर्तृत्व नहीं है और पश्चात्कथित महाशय इस झगड़े को इस तरह ते किए बैठे हैं कि जो काम होता है, मनुष्य के पुरुषार्थ से होता है; ईश्वर का इसमें कुछ भी कर्तृत्व नहीं है। क्योंकि इतिहास में स्पष्ट रूप से देखने में आता है कि नेपोलियन बोनापार्ट ने संपूर्ण योरप को अपने ही साहस और दृढ़ता से छिन्न-भिन्न कर दिया था, नादिरशाह और महमूद ग़ज़नवी आदि का हाल भी इसी तरह का है। अगर ये साहस-भरे वीर पुरुष साहस, दृढ़ता और पुरुषार्थ को एक किनारे रखकर केवल घर में ईश्वर पर भरोसा किए बैठे रहते, तो सारे योरप और भारतवर्ष में अपना सिक्का

*इस के संक्षिप्त नोट श्री आर. एस. नारायण स्वामी ने, जो उन दिनों ब्रह्मचारी थे और श्रीस्वामी राम की सेवा में साथ रहते थे, लिए थे और तत्पश्चात् आर्टिकल के रूप में वे छपाये गये थे। कर्म और प्रारब्ध के विषय पर कुछ समय सभा के सभासदों में शास्त्रार्थ होता रहा, तत्पश्चात् स्वामी जी का व्याख्यान आरम्भ हुआ।

कभी न जमा सकते। अतः साहस और दृढ़ता अर्थात् पुरुषार्थ ही आवश्यक है; ईश्वर पर भरोसा करके बैठे रहना अपने आपको आलसी और कायर बनाना है।

इसके संबन्ध में वेदांत यों कहता है कि यदि दूरदर्शितापूर्वक देखा जाय अर्थात् यदि इस झगड़े की सत्यता पर दृष्टि डाली जाय, तो विदित होगा कि इन दोनों बातों में—अर्थात् ईश्वर सब कुछ करता है वा पुरुषार्थ से सब कुछ होता है—कुछ भी अंतर नहीं है। बल्कि अंतर केवल उन दृष्टियों में है जो वास्तविकता तक नहीं पहुँचतीं। वेदांत तो उन सब लोगों की सेवा में जो कहते हैं कि ईश्वर ही सब कुछ करता है, यह प्रश्न उपस्थित करता है कि पहले केवल इतना बता दो कि आप ईश्वर का स्वरूप क्या माने बैठे हैं?—आया वह निराकार अर्थात् रूप-रहित है या साकार अर्थात् रूप-रेखवाला, आया वह शरीर के स्वामी की भाँति कर्ता पुरुष है या केवल अकर्ता; वह सम्बन्ध-सहित वा संगवाला है या निस्संबंध वा असंग? जब तुम हमारे इन प्रश्नों का उत्तर सविस्तर और ठीक-ठीक रीति से दे दोगे या सुन लोगे, तो तुम पर इस ग्रंथि का भेद आप ही खुल जायगा। फिर उन महाशयों को भी जो केवल साहस और दृढ़ता को ही मानते हैं और ईश्वर की इच्छा आदि को एक कोने रखते हैं और जो प्रमाण में इतिहास आदि की साक्षियाँ दे देकर पुरुषार्थ को सिद्ध किया चाहते हैं मगर अपनी बुद्धि को ज़रा और आगे नहीं दौड़ाते, वेदांत अपना आप समझकर यह उपदेश देता है कि प्यारो! यदि इतिहास की सत्यता को खूब समझकर पढ़ते, तो ये परिणाम न निकालते। यदि अब भी इतिहास को दुबारा गौर से पढ़ो, तो ऐसे परिणाम कभी भी आपको प्राप्त न हों;

बल्कि इनसे बढ़कर सफलता के उत्तमोत्तम कारण आपको दिखाई दें, क्योंकि इतिहास में प्रायः भ्रांति भी हो जाती है। एक तत्त्ववेत्ता ने क्या ही अच्छा कहा है कि—

" Don't read history to me, for I know it must be false. " (मुझे इतिहास पढ़कर न सुनाओ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इतिहास अवश्य झूठा होता है ।)

यह पढ़कर सारे इतिहासकार और इतिहासज्ञ बड़े आश्चर्यित होंगे। बल्कि यह प्रश्न उपस्थित करेंगे कि—

(१) क्या इतिहास बिलकुल झूठे ही होते हैं ?

(२) क्या ऐसे-ऐसे सुयोग्य इतिहासकारों ने केवल झूठ को ही उन्नति देने के लिये अपना बहुमूल्य समय व्यय किया था ?

इस तरह के उल्टे-पुल्टे आक्रमण करने को तैयार हो जायँगे।

इसमें राम का यह कहना है कि यद्यपि इतिहास बिलकुल ही झूठा नहीं होता, मगर प्यारो ! इस तत्त्ववेत्ता का कथन भी अनुचित नहीं है बल्कि कुछ सत्यता रखता है। यद्यपि वह देखने में व्यर्थ दिखाई देता है, मगर उसमें भी कुछ रहस्य है। क्योंकि हम नित्य देखते हैं कि मनुष्य जब अपने नित्य के रोज़नामचे लिखने में बहुत सी भूलें कर जाता है, तो सोचिये कि औरों के हाल लिखने में कितनी भूलें करता होगा। फिर आज कल लोग उन मनुष्यों के इतिहास लिख रहे हैं जिनको उनके बाप-दादे ने भी नहीं देखा था। केवल ऐतिहासिकों के झूठे-सच्चे वृत्तांतों को लेकर उसमें से कुछ उद्धृत करके अपने इतिहासों में अंकित कर रहे हैं। इससे स्पष्ट विदित होता है कि उनमें लाखों ही भ्रांतियाँ होती होंगी,

और केवल औरों की नक़ल करके अत्युक्ति से ही किताबें भरी जाती होंगी। क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि एक मनुष्य अपना आँखों-देखा हाल अपने रोज़नामचे में लिखते समय बीसों भूलें कर जाता है, तो फिर क्या यह बात असंभव है कि वह उन लोगों के हाल लिखने में अगणित भूलें न करता होगा जिनको उसने स्वयं तो क्या बल्कि उसके बाबा-परबाबा ने भी नहीं देखा है? इसलिये इतिहास की इबारत को समझने के लिये भी ऐसे मस्तिष्कवान् मनुष्य का होना आवश्यक है जो पढ़ते समय इन समस्त भ्रांतियों पर दृष्टि रक्खे; अन्यथा इबारत की शब्दावली पर ही लट्टू होने-वाले लोग न तो नेपोलियन के साहस और दृढ़ता (पुरुषार्थ) की सत्यता समझेंगे और न कोई और अच्छा परिणाम ही निकाल सकेंगे। मगर खैर, ऐसे महाशयों से भी जो केवल इति-हास के प्रमाण ही सामने रखना चाहते हैं और स्वयं कुछ नहीं विचारते वेदान्त बड़े प्रेम और स्नेह से यह पूछता है कि हमारे ही लिये अपनी दशा पर विचारकर बताओ कि किस समय आपको सफलता प्राप्त होती है? या दूसरे शब्दों में यह कि जिस समय आपको सफलता प्राप्त होनेवाली होती है तो उस समय आपकी क्या दशा होती है? (क्योंकि जब आप-को अपनी सफलता का तत्त्व विदित हो जायगा तो औरों की सफलता के विषय में अपने आप ठीक परिणाम अवश्य निकाल लोगे।) इसके उत्तर में प्रत्येक के अंतःकरण से यह ध्वनि निकलेगी कि हर काम में केवल उस समय सफलता होती है जब साहस भी अपूर्व हो और चित्त में अहंकार की गंध तक न हो। जो लोग नेपोलियन बोनापार्ट के साहस आदि का हवाला देते रहते हैं, अगर वे उसके जीवनचरित्र को गौर से पढ़ेंगे, तो अवश्य यह बात पाएँगे कि जिस समय

नेपोलियन बोनापार्ट सफलता प्राप्त कर रहा था उस समय उसके हृदय में कभी यह विचार उत्पन्न न होता था कि मैं काम कर रहा हूँ; बल्कि मस्ती के जोश से बेखबर होकर वह हमेशा लड़ता था, उसे सफलता प्राप्त होती थी। जब अहंकार को साथ लेकर लड़ा है, उसी समय उसने हार खाई और बंदी हुआ। क्योंकि यही प्रकृति का नियम है कि जहाँ अहंकार होता है वहाँ कभी भी सफलता प्राप्त नहीं होती। इस विषय में हरेक का अनुभव साक्षी है। क्योंकि प्रकृति का यह नियम कि "अहंकार से अलग होने पर ही सदैव सफलता होती है", केवल एक ही व्यक्ति पर लागू नहीं है बल्कि सब पर इसका शासन है।

शंका—जब अहंकार का भाव सफलता प्राप्त करते समय बिलकुल उड़ा हुआ था, तो उस समय नेपोलियन के हाथ से जो काम हुआ, वह किस गणना में होगा—किस नाम से पुकारा जायगा ?

उत्तर—वेदांत यहाँ यह कहता है कि जिस समय मनुष्य के भीतर से काम करते समय अहँकार दूर हो जाता है, तो उसके भीतर वह शक्ति काम करती है जो अहंकार से रहित अर्थात् स्वार्थ से दूर है। इसी शक्ति को, जो स्वार्थ और अहंकार की सीमा से परे है, वेदांत में ईश्वर कहते हैं। अतः सफलता प्राप्त होते समय केवल ईश्वर ही स्वयं काम करता है। यद्यपि उस समय सफलता प्राप्त करता नेपोलियन दिखाई दे और सफलता उसके नाम से भी पुकारी जाय, परंतु वास्तव में उस समय स्वयं ईश्वर या शक्ति ही काम करती है (या यों कहो कि ईश्वर ही सब काम करता है)। जैसे समुद्र का भाग जब बंगाल के नीचे होता है तो उसका

नाम बंगाल की खाड़ी होता है, जब अरब के नीचे है तो अरब का समुद्र कहलाता है और जब योरप के नीचे है तो रोम के सागर के नाम से प्रसिद्ध होता है। इत्यादि-इत्यादि। परंतु वास्तव में एक समुद्र के दो नाम भिन्न-भिन्न स्थानों के कारण भिन्न-भिन्न पड़ जाते हैं। इसी तरह एक सर्वव्यापी, सब पर आवृत्त शक्ति रूप शरीर जब नेपोलियन के द्वारा काम करता है, तो वह साहस के नाम से अभिहित होता है, और जब पेड़ के पत्तों आदि में काम करता है तो उसका नाम विकास होता है—अर्थात् यह कि पेड़ बढ़ रहा है। बात इतनी है कि एक रूप में उसकी नेपोलियन के साहस से पहचान हो सकती है और दूसरे रूप में वृक्ष के विकास से। मगर सब में वही एक शक्ति है, अर्थात् सारे काम वही शक्ति करती है। अतएव लोगों का यह कथन कि नेपोलियन ने विजय की, बिलकुल निरर्थक है और विजय की सत्यता को न जानना सिद्ध करता है।

अब उन महाशयों को लीजिए जो यह मानते हैं कि सारे काम ईश्वर की इच्छा से होते हैं, मगर ईश्वर की इच्छा से उनका अभिप्राय प्रारब्ध होता है। अर्थात् जो कुछ होता है वह ईश्वर की बनाई हुई प्रारब्ध से होता है और कर्म वा पुरुषार्थ से कुछ नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि वे इन शब्दों—अर्थात् कर्म और प्रारब्ध—के अर्थ नहीं जानते। उनको भी वेदांत यों समझाता है कि प्यारो! अगर तुमने इन दोनों की सत्यता को समझा होता तो भ्रांति से लोगों के साथ झगड़ा करने में समय न बिताते, बल्कि अपने सुधार में अपना समय देते। अस्तु, अब आप इस विषय के निर्णय को ध्यान से पढ़कर इसका परिणाम हृदयंगम कीजिए।

वेदांत इस विषय का यों निपटारा करता है कि जैसे

गणित में एक ही वाक्य में दो प्रकार के राशि होते हैं, एक राशि अस्थिर और दूसरे राशि स्थिर, जैसे—

$३ \text{ अ } \text{ल}^{५} + ६४ \text{ अ } \text{ल}^{४} — \text{अल} + \text{अ } \text{ल}^{२} - \text{अ } \text{ल}^{३}$

इनमें अ स्थिर है और ल अस्थिर। इसी तरह मनुष्य में भी दो शक्तियाँ मौजूद हैं--एक स्वतंत्र,स्वाधीन अर्थात् कर्म करने की शक्ति और दूसरी परतंत्र या पराधीन। तात्पर्य यह है कि प्रारब्ध स्वाधीन नहीं है, स्वतंत्र नहीं है।

अब यह देखना चाहिए कि मनुष्य कहाँ तक स्वाधीन है और कहाँ तक पराधीन। कहाँ तक मनुष्य में स्वतंत्रता अर्थात् कर्म करने का अंश है और कहाँ तक, उसमें पराधीनता अर्थात् प्रारब्ध का अंश है।

इससे पहले कि इस विषय को और प्रकार हल किया जाय, गणित का ही उदाहरण लेकर ले किया जाता है। क्योंकि यद्यपि हम लोगों को नित्य प्रति नदी में तैरते देखते हैं, मगर तैराकी का समझना या समझाना ज़रा कठिन बात है, किए ही से समझमें आती है। और तरह नहीं। इसी तरह यद्यपि हम नित्य प्रति इन दोनों वस्तुओं को मनुष्यों में देखते हैं, फिर भी उदाहरणों के बिना इनका समझना या समझाना बहुत कठिन होता है। इसलिये यदि इस प्रश्न को हल करने के लिये गणित आदि के उदाहरण उपस्थित किए जायँ, तो कुछ अनुचित नहीं।

द्रव्य-शास्त्र (हाइड्रोस्टेटिक्स) में द्रव्य की गति पहले एक बूँद की गति के द्वारा निश्चित की जाती है और फिर कभी-कभी समवाय रूप से अर्थात् संपूर्ण जल के प्रवाह की गति के द्वारा मालूम की जाती है। इसी तरह कर्म और प्रारब्ध के इस मामले में भी दो प्रकार से विवेचना की जायगी, एक

व्यष्टि रूप से, दूसरे समष्टि रूप से। इन्हीं को संस्कृत में व्यष्टि और समष्टि भाव कहते हैं।

यदि मनुष्य की दृष्टि से अर्थात् व्यष्टि रूप से विचार किया जाय तो मालूम होगा कि इसमें एक ऐसा अंश है जिसको स्वतंत्र या स्वाधीन कर्म के नाम से अभिहित करते हैं और एक ऐसा है जिसको पराधीन, परतंत्र या प्रारब्ध (भाग्य) के नाम से प्रसिद्ध करते हैं। जैसे रेशम के कीड़े का हाल है कि जब तक उसने अपने भीतर से रेशम नहीं निकाला, तब तक वह स्वतंत्र है और तब तक ही वह स्वाधीन वा स्वेच्छाचारी कहा जाता है; मगर जब रेशम निकाल चुकता है तो फँस जाता है अर्थात् परतंत्र कहलाता है। इसी तरह जो कर्म मनुष्य से हो चुका है, उसके कारण वह उसके फल भोगने को परतंत्र या पराधीन है; मगर जो कर्म कि अभी तक किया ही नहीं, उसके कारण वह स्वाधीन है और उसके करने का अधिकार रखने के कारण स्वतंत्र और स्वेच्छाचारी कहा जाता है। जैसे मकड़ी जाला बनाने के बाद परतंत्र या पराधीन है और उससे पहले स्वतंत्र या स्वाधीन, या जैसे रेलगाड़ी जब तक सड़क नहीं बनी, हर ओर चलने के लिये स्वाधीन है, और जब सड़क बन गई तो उसपर चलने के लिये विवश है—अर्थात् सड़क बनने के बाद रेलगाड़ी उसपर चलने के बंधन में आ जाती है, इसी तरह मनुष्य भी एक कर्म के करने से पहले उसके फल आदि से स्वतंत्र है और कर्म करने के पश्चात् उसके फल भोगने में परतंत्र है। अतः मनुष्य में इन दो वर्तमान अंशों का नाम स्वतंत्रता और परतंत्रता या कर्म और प्रारब्ध (भाग्य) है। यद्यपि कुछ लोग कर्म और भाग्य को एक ही गिरोह में गिनते हैं अर्थात्

इन दोनों के एक ही अर्थ करते हैं ; मगर वेदांत में भाग्य से तात्पर्य है परतंत्र, पराधीन वा जकड़ा हुआ—अर्थात् मनुष्य में वह अंश जो कर्मों के फल भोगने में परतंत्र वा विवश है; और कर्म से तात्पर्य है स्वतंत्र वा स्वाधीन अर्थात् मनुष्य में वह अंश जो अभी फल आदि के बंधन से मुक्त है और स्वतंत्र वा स्वेच्छाधीन है। अँगरेज़ी में एक कहावत है कि 'मनुष्य अपनी प्रारब्ध बनाने का आप अधिकार रखता है' अर्थात् 'मनुष्य अपना भाग्य अपने हाथों बनाता है'। इसमें हमारे शास्त्र का भी यही सिद्धांत है कि 'जैसा करोगे, वैसा भरोगे,। इसके अर्थ यही हैं कि जैसे कर्म या कामना करोगे, वैसे उनके फल दूसरे जन्म में या इसी जन्म में भाग्य के रूप में प्रकट हो जायँगे।

लोग इस बात पर दिन-रात रोते रहते हैं कि हाय! हमारी "कामनाएँ पूरी नहीं होतीं। मगर वेदांत इसमें यों कहता है—प्यारो! अगर तुम्हें रोना ही स्वीकार है तो धाड़ मारकर रोओ, मगर इस बात पर, कि तुम्हारी कामनाएँ अपना फल दिए बिना नहीं रहेंगी।" यह सुनकर हर एक अनजान के मन में यह शंका उठती है कि यदि मान भी लिया जाय कि हमारी सारी कामनाएँ पूरी होती हैं, तो वह क्यों पूरी होती है? इसके उत्तर में वेदांत यह बताता है कि मन का, जिसमें संकल्प अर्थात् कामनाएँ उठती हैं, मूल केवल आत्मदेव है, जो सत्यकाम और सत्यसंकल्प है—अर्थात् इसका प्रत्येक विचार और कामना सच्ची हुए बिना नहीं रहती। इस (आत्मदेव) को ही शक्ति या ईश्वर के नाम से अभिहित करते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि इसकी सारी कामनाएँ पूरी हों क्योंकि वह अपना मूल सत्यकाम और सत्यसंकल्प रखता है।

शंका—अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वेदांत का जब यह सिद्धांत है कि मन की कामनाएँ पूरी होती हैं, तो वह पूरी होती हुई दिखाई क्यों नहीं देतीं? क्योंकि किसी को भी अपनी कामनाएँ हर समय पूरी होती दिखाई नहीं देतीं हैं। अतएव उपर्युक्त शास्त्र का सिद्धांत बिलकुल मिथ्या और अशुद्ध है।

उत्तर—वेदांत इसका कारण यों बताता है कि जैसे बड़ी अदालत (chief court) और छोटी अदालत (small cause Court) दो अलग-अलग अदालतें होती हैं। बड़ी अदालत में तो मुक़द्दमे अति लंबे-लंबे और अधिक होते हैं, इसलिये उनकी पेशी की तारीख़ १५ वर्ष या उससे कुछ न्यूनाधिक रक्खी जाती है। इतने समय में संभव है कि मुद्दई मर जाय या जज साहब ही बदल जायँ या वकील साहब आदि न रहें, मगर मुक़द्दमे की पेशी अवश्य होती है और किसी किसी तरह का फ़ैसला भी अवश्य होता है। चाहे पहली पेशी में, चाहे चार या पाँच पेशियों के बाद—अर्थात् बहुत शीघ्र भी यदि प्रयत्न किया जाय तो २० या २५ वर्ष में मुक़द्दमा फ़ैसल होता है; और दूसरी अदालत ख़फ़ीफ़ा में मुक़द्दमे छोटे-छोटे और बहुत थोड़े होते हैं, इसलिये पेशी की तारीख़ भी उसी दिन या एक दो दिन के बाद रक्खी जाती है। और पहिले तो वह मुक़द्दमा कच्ची पेशी ही में तय हो जाता है, अगर देर भी लग जाय तो भी एक सप्ताह के भीतर-भीतर ही फ़ैसल हो जाता है—अर्थात् मुक़द्दमे बहुत थोड़े और छोटे होने के कारण बहुत शीघ्र फ़ैसल हो जाते हैं। ऐसे ही मनुष्य भी दो प्रकार के मनवाले होते हैं। एक ऐसा मन रखते हैं कि जिसके भीतर बड़े बड़े भारी और असं-

व्य संकल्प-कामनाएँ उत्पन्न होती रहती हैं और अधिक एवं भारी होने के कारण चीफ़कोर्ट की भाँति, जहाँ मुक़द्दमे शीघ्र फ़ैसल होने नहीं पाते और जहाँ यह भी सम्भव है कि वे मुक़द्दमे (संकल्प कामना आदि) फ़ैसल होने के लिये अगर उस जज साहब (ऐसे मनवाले मनुष्य) की दो-तीन पेशियां (दो-तीन जन्म) भी ले लें, तो बड़ी बात नहीं है। इसीलिये ऐसे मन रखनेवाले महाशयों को, जो लगभग सब संसारी ही होते हैं, चीफ़कोर्ट अर्थात् बड़ी अदालत के जजों की पंक्ति में गिनना चाहिए; और कुछ लोग ऐसा मन रखते हैं जिस के भीतर कामनाएँ बहुत कम और बहुत छोटी छोटी उठती हैं अर्थात् जहां मुक़द्दमे बहुत थोड़े और छोटे-छोटे होते हैं, इस हेतु पहले तो एकदम में ही, नहीं तो एक दो घंटे या दिनों के भीतर-भीतर पूरे (फ़ैसल) हो जाते हैं। ऐसे मन रखनेवाले महाशय, जो प्रायः ज्ञानी या ऋषि लोग होते हैं, हिंदुओं के यहां अदालत ख़फ़ीफ़ा के जज माने जाते हैं। यद्यपि नाम या अदालत के विचार से ये छोटे दिखाई देते हैं परन्तु पद में इनको हमारे शास्त्र औलिया या पैगंबर (सिद्ध या अवतार) की श्रेणी में गिनते हैं। मगर यह याद रहे कि कामनाएं अर्थात् मुक़द्दमे इन दोनों महाशयों के फ़ैसल अवश्य होंगे—अर्थात् वास्तव में ये दोनों महाशय सत्यकाम और सत्यसंकल्प अवश्य कहे जायँगे; केवल अंतर इतना रहेगा कि एक के मुक़द्दमे (कामनाएं) बहुत देर में और मुद्दत के बाद फ़ैसल होंगे और कामनाओं के देर में पूरी होने के कारण वह महाशय सत्यकाम और सत्यसंकल्प प्रकट में नहीं मालूम होंगे; और दूसरे के मुक़द्दमे (संकल्प) बड़ी जल्दी बल्कि तत्काल पूर्ण होते दिखाई देंगे, और कामनाओं के शीघ्र पूरा होने के कारण वे सत्यकाम और सत्यसंकल्प

दिखाई देंगे। मगर इन दोनों व्यक्तियों के संकल्पों अर्थात् मुक़द्दमों के पूरा होने में तनक भी संशय नहीं है। अतएव ऐसे महाशय जो इस बात की शिकायत करते हैं कि हमारी कामनाएँ पूरी होती नहीं दिखाई देतीं, इसमें केवल उनकी अपनी कमी है। यदि वे अपनी कामनाओं को पूरा होते देखना चाहते हैं तो अदालत ख़फ़ीफ़ा के जज (ज्ञानी, सिद्ध, अवतार) की भांति अपनी अवस्था बनाएं—अर्थात् उनकी भाँति मन में कामनाएँ (संकल्प मुक़द्दमे) छोटी-छोटी और बहुत थोड़ी होने दें। स्वयं उनको अपना अनुभव अपने आप साक्षी देगा वरन् उनको फिर कहने की भी आवश्यकता न रहेगी।

शंका—यदि स्वयं हमारी ही कामनाएँ पूरी होती हैं तो फिर भाग्य के, जिसकी चर्चा शास्त्रों में प्रायः आती है, क्या अर्थ हैं?

उत्तर—केवल जो कामनाएँ असंख्य होने के कारण एक जन्म में मरण पर्यंत पूरी नहीं हुईं, उनका अवशिष्ट समुदाय, पूरा होने के लिये, अपनी शक्ति के अनुसार, दुबारा जन्म दिलाता है और वही, न पूरी हुईं कामनाएँ, जिन्होंने मरने के पश्चात् अपना-अपना फल देने के लिये दुबारा जन्म दिलाया है, अब (दूसरे जन्म में) भाग्य कहलाती हैं और इसीलिये हमारे शास्त्रों में लिखा है कि संकल्पों या कामनाओं के अनुसार लोगों का दूसरा जन्म होता है।

शंका—हिंदुओं के यहाँ यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'अंत मता सोई गता' अर्थात् जैसी मरने के समय कामनाएँ होती हैं उन्हीं के अनुसार दूसरा जन्म होता है। मगर आप बतला

रहे हैं कि जो कामनाएँ पूरी हुए बिना पहले जन्म से बची रहती हैं, उनका फल जन्म होता है। इसमें फ़र्क़ क्यों है?

उत्तर—वेदांत भी इस बात का अनुमोदन करता है कि जो विचार अंत में अर्थात् मरने के समय होते हैं, उन्हीं के अनुसार दुबारा जन्म होता है। मगर साथ इसके वेदांत इस बात पर बड़ा ज़ोर देता है कि मरते समय विचार और कामनाएँ भी वही मन में आती हैं जो जीवन में मनुष्य के चित्त पर सवार रहती थीं। क्योंकि परीक्षा के कमरे में प्रश्नों के उत्तर उसी बालक के मन से निकलते हैं जो वर्ष भर पहले पढ़ता रहा है; और जो सारी आयु में पढ़ा ही नहीं वह कभी संभव ही नहीं है कि परीक्षा में जाकर पर्चा लिख आवे या परीक्षा उत्तीर्ण कर सके। अलबत्ता वही व्यक्ति परीक्षा पास कर सकता है जो परीक्षा के समय से पहले सारी आयु पढ़ता रहा हो। इसी तरह जो व्यक्ति सारी आयु भर बुरे विचार या बुरी कामनाएं करता रहता है, तो संभव नहीं है कि मरने के समय अच्छी कामनाएं उसके मन में उत्पन्न हों; और न यह संभव हो सकता है कि जो व्यक्ति सारी आयु अच्छी कामनाएं या अच्छे काम करता रहा हो, मरने के समय बुरे विचार या बुरे काम उसके मन में प्रवेश करें, बल्कि जो विचार सारी आयु भर में पहले उठते रहे हैं और अभी तक पूरे नहीं हुए वही विचार मृत्यु के समय उसके मन में आयंगे या उन्हीं का समवाय शरीर धारण करके मृत्यु के समय उसके सामने आयगा और उनके अनुसार वह मरने के पश्चात् दुबारा जन्म लेगा।

अतः यह सिद्ध हुआ कि एक जन्म की अवशिष्ट कामनाओं का फल प्राप्त करना ही दूसरे जन्म की आवश्यकता

उत्पन्न करता है। वह व्यक्ति जिसके मन में मरने से पहले ही (जीवन-काल में) विचारों का उठना बंद हो गया है, उसके मन में मरने के समय भी कोई अच्छा या बुरा विचार उत्पन्न नहीं हो सकता। इसीलिये उसका कोई और जन्म भी नहीं होता। मगर ऐसी अवस्था प्रायः ज्ञानी या जीवनमुक्त पुरुषों की होती है। अतः जब यह सिद्ध हुआ कि जो कामना (संकल्प) या कर्म मनुष्य कर चुका है, उनका फल अवश्यमेव उसको विवश होकर भोगना पड़ता है और पहले कर्मों या संकल्पों का ही फल दूसरे जन्म में भाग्य कहलाता है, तो इससे स्पष्ट प्रकट है कि भाग्य के कारण मनुष्य परतंत्र या बद्ध है और दूसरा अंश मनुष्य में स्वतंत्रता का अर्थात् कर्म करने का है जिस कर्म या कामना के करने से उसका आगामी भाग्य बनता है और जिसके करने में वह बिलकुल स्वतंत्र है, चाहे उसको करे चाहे न करे, और इसी कारण तत्त्ववेत्ताओं ने भी यह कहा है कि मनुष्य अपना भाग्य अपने हाथों बनाते है, क्योंकि यद्यपि मकड़ी में जाला तनने की शक्ति है, मगर जब तक उसने अपने मुँह से तार बाहर नहीं निकाले हैं वह बिलकुल स्वतंत्र है, मगर जब निकाल दे तो फिर उसमें बद्ध है। इसी तरह कर्म करने से पहले मनुष्य स्वतंत्र है और जब कर दिया तो उसके फल अर्थात् भाग्य का परतंत्र या बद्ध है। यह तो कुछ थोड़ा सा एक व्यक्ति रूप से वा व्यष्टि भाव से स्पष्ट किया है, मगर जब समुच्चय रूप से या समष्टि भाव से देखा जाता है तो और ही बात दिखाई देती है। हरबर्ट स्पेंसर साहब कहते हैं कि देश की अवस्था भी स्वयं अपने अनुकूल मनुष्य उत्पन्न कर लिया करता है।

यह बात ठीक है, क्योंकि जब थोड़ा विचारपूर्वक इन

सब बातों पर समुच्चय रूप से दृष्टि डाली जाय तो मालूम होता है कि वह नेपोलियन बोनापार्ट जो व्यष्टि रूप से स्वतंत्रतापूर्वक काम करता दिखाई देता था, उस व्यक्ति की भी ऐसे समय पर, ऐसे ज़माने में, आने की निस्संदेह आवश्यकता थी। इसलिये जब समष्टि रूप से देखा जाता है, तो मालूम होता है कि कोई दैवी शक्ति प्रत्येक में छिपी हुई (निहित) है, उसकी बदौलत मनुष्यों का जन्म सदैव वहाँ होता है जहाँ उनकी पहले आवश्यकता होती है, और उसी शक्ति की बदौलत सारे संसार में पुरुषों और स्त्रियों की संख्या भी एकसां रहती है। जिस प्रकार एक वस्तु में स्थिर (positive) और चंचल (negative) दोनों प्रकार की बिजली एकत्र होती है, इसी तरह वह नियम जो इधर इच्छावाले उत्पन्न करता है उधर उनकी इच्छाओं को पूरा करनेवाला भी उत्पन्न करता है, इस तरह से दोनों पलरे बराबर तुले रहते हैं। इस नियम से सिद्ध होता है कि वह नेपोलियन बोनापार्ट, जिसको आप स्वतंत्र कह रहे हैं, इसी नियम की बदौलत जन्म लेकर आया है अर्थात् जिसको स्वतंत्र कहा जाता था वह भी एक शक्ति के अधीन होकर जन्म लेता है। इस प्रकार से व्यष्टि रूप से तो यद्यपि वह स्वतंत्र दिखाई देता है मगर समष्टि रूप से यदि देखा जाय तो वह भी वैसा ही परतंत्र और बद्ध है जैसा कि व्यष्टि रूप से एक मनुष्य भाग्य की दृष्टि से परतंत्र या बद्ध कहलाता था अथवा दिखाई देता था।

प्रश्न—अतः समष्टि रूप से जब यह सिद्ध है कि सब काम एक ही शक्ति (चेतन) के द्वारा होते हैं अर्थात् एक ही चेतन सब कुछ करनेवाला है, तो फिर क्यों हरएक के मन में यह विचार उठता है कि "मैं स्वतंत्र हूँ"? साथ ही आप किस प्रकार कहते हैं कि मनुष्य स्वतंत्र और परतंत्र दोनों है?

दरमियाने-कारे-दरिया तख़्ता-बंदम करदाई।
बाज मे गोई कि दामन तर मकुन हुशियार बाश॥

तात्पर्य—ऐ प्रभो! गहरे दरिया में तूने स्वयं तो मुझे बांध-कर फेंक दिया है और फिर ऐसे कहता है कि कपड़ा मत भिगो (अर्थात् लिपायमान मत हो) और हुश्यार रह।

उत्तर—यद्यपि द्वैत अर्थात् नानात्व के माननेवाले भी अभी तक इस प्रश्न का पूर्ण रूप से उत्तर नहीं दे सके, मगर वेदांत बड़े ज़ोर से गर्ज कर प्रेम पूर्वक प्रत्येक को यह उत्तर देता है कि प्यारो! यह भेद या रहस्य, जो संसार भर के दर्शनों और धर्मों से स्पष्ट नहीं हुआ और जिसका उत्तर देने में भेदवादियों की आँखें नीची हो जाती हैं, बताता है कि हाँ वही परम स्वतंत्र, जो प्रत्येक के भीतर बोल रहा है कि "मैं स्वतंत्र हूँ" और जो सबका अंतर्यामी है और जिसके फुरने मात्र से ही यह संपूर्ण जगत् बना हुआ है, वही सारे का सारा मनुष्य के भीतर मौजूद है और वहीं मनुष्य का अंतरात्मा है, वही बाहर है। जैसे श्रुति कहती है—

"यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह मृत्योः स मृत्युमाप्नोति यइह नानेव पश्यति"॥ (क० अ० २ मं० १०)

अर्थात्—जो यहाँ है, निःसंदेह वही वहाँ है, और जो वहाँ है वही यहाँ है। इस स्थान पर जो भेद देखता है वह निःसंदेह एक मृत्यु से दूसरी मृत्यु के मुँह में जाता है।

और यही भेद इस बात को और श्रुतियों के द्वारा स्पष्ट रीति से पुकारकर प्रकट कर रहा है कि जो बाहर है वही तुम्हारे भीतर है। यथा—

"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वंतिके।
तदंतरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः" (ई० अ० १ मं ५)

अभिप्राय—हम चल हैं, हम चल हैं नाहिं, हम नेड़े हम दूर। हम ही सब के अन्दर चानन, हम ही बाहिर नूर।

और बहुत सी श्रुतियाँ हैं जो इस रहस्य को स्पष्ट रूप से खोलकर दर्शाती हैं। पर उन सब के लिखने से ग्रन्थ के ग्रन्थ भर जायंगे, इसलिये इस समय केवल इतना ही समझा देना काफ़ी है।

अब जो वेदांत ने पहले बताया है कि मनुष्य में एक अंश स्वतंत्र और एक अंश परतंत्र है, इसके अर्थ केवल यही हैं कि उस परम स्वतंत्र स्वरूप आत्मा की दृष्टि से जो आपके भीतर सारे का सारा मौजूद है, आप स्वतंत्र हैं; और शरीर की दृष्टि से आप बिलकुल परतंत्र वा बद्ध हैं। शरीर को यदि कहो कि स्वतंत्र है तो कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर की दृष्टि से उस पर कोई न कोई अधिकार रखनेवाला अवश्य रहता है। और फिर यह शरीर रोगादि व्याधियों के भी वश में रहता है और पहले कर्मों के फल भोगने को भी विवश है, इसलिये शरीर किसी भाँति स्वतंत्र नहीं हो सकता; और न परिवर्तनशील होने के कारण स्वतंत्र कहा जा सकता है। हाँ, अगर तुम स्वतंत्र कहे जा सकते हो तो उस परम स्वतंत्र स्वरूप के कारण से कहे जा सकते हो जो तुम्हारे भीतर उच्च स्वर से बोल रहा है कि "मैं स्वतंत्र हूँ, मैं स्वतंत्र हूँ", और यही परम स्वतंत्र आत्मदेव जो तुम्हारे भीतर से बोल रहा है, वही है जो सब वस्तुओं में समा रहा है। इस समय वार्तालाप यद्यपि द्वैत वाली दिखाई देती है, मगर स्मरण रहे कि ऐसा बोलने का प्रयोजन केवल तुमको ऊपर की ओर, अद्वैत में लाने का है। पहले रहस्यों को समझाने के लिये, केवल द्वैत जाननेवालों के

लिये, उन्हीं की बोली ग्रहण करनी पड़ती है, जैसे अध्यापक बच्चे को जब आरंभ से पढ़ाता है तो उसके लिये केवल अलिफ़ को अफ़लं ही कहना पड़ता है। यद्यपि अध्यापक अलिफ़ की जगह अफ़ल केवल बच्चे के लिये बोल देता है, मगर अध्यापक का प्रयोजन लड़के को अलिफ़ कहलाने का होता है। इसी तरह अगर यहाँ एक आत्मा और एक शरीर या भीतर और बाहर अलग-अलग करके द्वैत बोली में बताया गया है तो भी वेदांत का प्रयोजन आपको द्वैत में डालने का नहीं है, बल्कि उसके द्वारा आपको ऊपर चढ़ाकर अद्वैत में ले जाने का है। तत्पश्चात् आपका भेद भी स्पष्ट खोला जा सकता है। मगर अभी आपको यहाँ तक समझ लेना आवश्यक है कि वह परम स्वतंत्र सब का अंतर्यामी आत्मदेव जो तुम्हारे भीतर बोल रहा है कि "मैं स्वतंत्र हूँ". वही देव बाह्य वस्तुओं में व्यापक है। जैसे जिस व्यक्ति के शरीर के किसी भाग में खुजली होती है तो उसी व्यक्ति का हाथ अपने आप ठीक स्थान पर जाकर खुजला लेता है, मगर अन्य व्यक्ति का हाथ अपने आप कभी भी ठीक जगह पर नहीं खुजला सकता। इसका क्या कारण है? इसका कारण यही है कि सारे शरीर में यही 'मैं' (आत्मदेव) भरपूर है, मेरी ही शक्ति सारे शरीर में फैली हुई है, क्योंकि जहाँ खुजली हुई थी वहाँ भी मैं ही था और मेरी चेतन शक्ति ही वहाँ मौजूद थी। यद्यपि वार्तालाप में भी यही आता है कि 'मुझे खुजली हुई' और जब हाथ के द्वारा दूर की गई तो उसमें भी मैं ही आत्मदेव मौजूद था और उसमें मेरी ही शक्ति व्याप रही थी जबकि यह कहा जाता है कि मेरे हाथ ने खुजली दूर की। अतः इन. शब्दों से कि (मुझे खुजली) हुई और मेरे ही हाथ ने दूर की, सारे कथन का अभिप्राय यह

है कि खुजली की जगह और उसके दूर करनेवाले हाथ में शब्द 'मैं' (आत्मदेव) दोनों स्थानों में एक है। इससे प्रकट हुआ कि वही एक आत्मदेव शरीर के सारे भागों में फैल रहा है। यह व्यष्टिरूप से सिद्ध हुआ कि एक ही आत्मा शरीर के भीतर और बाहर या ऊपर और नीचे फैल रहा है। अब समष्टि रूप से बताया जाता है कि जिस समय आप रात को सो जाते हैं और सवेरे के समय जागने लगते हैं तो उस समय आँखें कुछ देखना चाहती हैं, अर्थात् उस समय आँखों को प्रकाश अनुभव करने के लिये खुजली होती है। मगर जब इधर आंखों को प्रकाश का अनुभव करने के लिये खुजली होती है, तो उधर से झट ठीक स्थानपर खुजली को दूर करने के लिये सूर्य रूपी हाथ आ जाता है। जैसे पहले बतलाया गया है कि जिसके बदन पर इधर खुजली होती है, उधर उसका ही हाथ उसको दूर करने के लिये भागता है, ऐसे ही इन दोनों का एक ही अवसर पर प्रकट होना सिद्ध करता है कि इन दिनों आँख (खुजली का स्थान) और सूर्य (खुजली दूर करनेवाला हाथ) के बीच में एक ही चेतन है। यह बात प्रत्येक को अपने-अपने अनुभव से सिद्ध हो जायगी कि जो लोग भीतर और बाहर एक ही आत्मदेव (अर्थात् एक मैं ही हूं) के देखने का अभ्यास करते रहते हैं, उनमें व्यावहारिक रूप से अद्वैत या प्रेम आ जाता है, बल्कि उनकी ऐसी अवस्था हो जाती है—

खूँ रगे-मजनूँ से निकला फस्द लैली की जो ली।
इश्क में तासीर है पर जज्बे-कामिल चाहिये॥

बल्कि जो व्यक्ति ऐसा अभ्यास बराबर करता रहेगा कि "मैं शरीर नहीं हूं" "मैं परिच्छिन्न मन, बुद्धि, अहंकार आदि नहीं हूँ, किन्तु संपूर्ण शरीरों का स्वामी हूं और सब शरीरों में मैं

ही फैला हुआ हूं," तो उसको इसका अनुभव इस बात के प्रमाण में स्वयं साक्षी देगा कि हां भीतर बाहर सब वस्तुओं में केवल एक ही चेतन आत्मदेव काम कर रहा है, और एक ही आत्मा (जो वास्तव में 'मैं' है) संपूर्ण जगत् में फैला हुआ है।

पहले वर्णन हो चुका है कि विशेष साहस और दृढ़ता जहां पर बड़े ज़ोर से होते हैं, वहां स्वार्थपरता की गंध नहीं होती, वहां कार्य अवश्य-अवश्य पूरे होते हैं। और जहां साहस और प्रयत्न कम होते हैं और स्वार्थ संग होता है, वहां सदैव असफलता रहती है। इस भेद के न समझने से कुछ महाशयों के चित्त में यह संदेह प्रायः उठता है कि निःस्वार्थ कार्य में क्यों सफलता होती है और स्वार्थ-पूर्ण कार्य में क्यों नहीं होती? इसका कारण वेदांत यह बतलाता है कि साहसी और स्थिर पुरुष नर-केसरी होता है और इसी कारण से वह मस्ती के मंदिर में रहता है, इसलिये वह एक अवस्था में ब्रह्मनिष्ठ होता है और बेखबरी से व्यावहारिक रूप से उसका अपने स्वरूप में, जो मन से परे है, निवास होता है और यही कारण है कि उसको सफलता प्राप्त होती है, क्योंकि उस अवस्था में केवल सत्यकाम और सत्यसंकल्प स्वरूप (आत्मदेव) से ही काम होते हैं। और जो हमारे शास्त्रों में लिखा हुआ है कि कर्मकांड से मन की शुद्धि होती है, इसका तात्पर्य भी केवल यही है कि जो व्यक्ति अपने कर्तव्य को भली भांति निभा रहा है, वह कर्मकांड को निभा रहा है। पहले समय में और कोई काम इतना फैला हुआ न था, केवल यज्ञादि करने का काम जारी था। इसलिये उन दिनों सब लोगों के लिये नित्यप्रति यज्ञ करना ही हरएक का कर्तव्य

था। मगर आज कल ऋषियों ने इस युग के अनुसार इन्हीं पहली वस्तुओं को संक्षिप्त रूप में उपासना, भक्ति और घर-बार के कामों के रूप में बदलकर आज कल के लोगों का कर्तव्य बना दिया है। इस लिये आज कल जो इन विधानों को ही अपने व्यवहार में लाता रहता है, वह कर्तव्य को पूरा कर रहा है, और इस तरह कर्मकांड को भली भांति निभा रहा है; और जो व्यक्ति व्यावहारिक रूप में अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिये उद्यत है, वह व्यावहारिक रूप में संसार-क्षेत्र से परे जा रहा है और उसका निवास मन से परे होता जाता है। इस प्रकार से ज्यों ज्यों वह वैखरी से मन से परे होता अपने स्वरूप में लीन होता जाता है, उतना ही उसके मन की गति भी आत्मा की ओर होती जाती है और उधर प्रवृत्त रहने से शुद्ध होती जाती है, और फिर वह ज्ञान का अधिकारी होता जाता है।

शंका—अगर ईश्वर अलग न होता तो हमारी प्रार्थनाएँ, जो प्रायः स्वीकृत होती हैं, क़दापि स्वीकृत न होतीं। और जब कि यह बात हम अपनी आँखों प्रत्यक्ष देखते रहे हैं कि हमारी प्रार्थनाएँ स्वीकार होती हैं, हम किस तरह तुम्हारे सिद्धांत को मान सकते हैं जो कि हमारे निजी अनुभव के साफ़ विरुद्ध है?

राम का यहाँ कहना है कि प्रथम तो संपूर्ण मनुष्यों की प्रार्थनाएँ स्वीकार नहीं होतीं; हाँ कुछ मनुष्यों की स्वीकार होती हैं; उनकी भी यदि इस बात में साक्षी ली जाय कि प्रार्थनाएँ किस समय और क्यों स्वीकार होती हैं, तो उनसे साफ़-साफ़ वेदांत के अनुसार यही उत्तर मिलेगा कि हाँ किसी व्यक्ति की प्रार्थना उस समय स्वीकार होती है जब

एक इष्टदेव को सामने रखकर प्रार्थना करनेवाले पर, संयोग से या बेखबरी से, ऐसी अवस्था आ जाती है, जिसकी प्रशंसा में एक कवि यों कहता है—

तू को इतना मिटा कि तू न रहे, और तुझमें दुई कि बू न रहे।
जुस्तजू भी हिजाबे हिजाबे दरसनी है, जुस्तजू है कि जुस्तजू न रहे॥
आरजू भी विसाले-परदा है, आरजू है कि आरजू न रहे।

या जिस समय कि उसका मन अपने स्वरूप (आत्मा) में डूबा हुआ होता है और जिस समय उसमें "मैं हूं" और "तू है" यह विचार दूर हुए होते हैं, अर्थात् जिस समय 'तू' 'मैं' से परे गया हुआ होता है और ऐसे स्थान में पहुँचा हुआ होता है कि जहाँ पर बुद्धि का भी यह हाल हुआ होता है—

अगर यक सरे-मूए बरतर परम।
फरोगे-तजल्ली बसोज़द परम॥

अभिप्राय—अगर मैं एक बाल के सिरे के बराबर भी और बढ़ूं तो उसके तेज से मेरा पर जल जाय।

उस समय प्रार्थना स्वीकार होती है, क्योंकि उस समय प्रार्थना करनेवाला अपने स्वरूप में डेरे लगाए हुए होता है जो सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, जहाँ विचार उठते ही पूरा हो जाता है—अर्थात् उस समय उस छोटी "मैं" या स्वार्थ से रहित होकर प्रार्थना होती है। दूसरे अर्थों में यह कि उस समय अपने यथार्थ स्वरूप सत्यकाम और सत्य संकल्प से प्रार्थना निकलती है और उठते ही तत्काल पूरी होती है। न कहीं अलग शरीरधारी ईश्वर उसको सुनकर स्वीकार करता है और न कोई इष्टदेव उपस्थित होकर स्वीकृति की आज्ञा प्रदान करता है, बल्कि आप ही "एकमेवाद्वितीयम्" उस समय करते कराते हो।

इन ऊपर लिखे हुए उदाहरणों से प्रकट हुआ कि अपने ही स्वरूप "एकमेवाद्वितीयम्" से जो संपूर्ण अन्य शरीरों का भी अन्तरात्मा है और जो सत्यकाम और सत्यसंकल्प है सारे संसार की प्रार्थनाएं कामनाएं और संकल्प आदि पूरे होते हैं। किंतु आश्चर्य की बात केवल यही है कि जिसकी बदौलत यह सब सफलता हो रही है, उसके पाने की या उसके जानने की बिलकुल इच्छा या प्रयत्न नहीं किया जाता। एक कहानी है कि किसी राजा के असंख्य रानियां थीं जो हर प्रकार से अपने राजा को प्रसन्न रखने में शील रहती थीं। एक दिन राजा ने इन सब रानियों को बुलाकर कहा कि मैं तुम से बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिये मेरी राजधानी में जौनसी वस्तु माँगो, मैं देने को तैयार हूँ। इसपर किसी ने मोतियों का हार माँगा, किसी ने असंख्य आभूषण माँगे, किसी ने राजधानी का कुछ भाग माँगा, किसी ने लाल पन्ने आदि माँगे; मगर केवल एक ने राजा की बाहु पकड़कर कहा कि मैं तुमको मांगती हूं, जिसपर वह सब रानियों से बढ़ गई, क्योंकि उसने सारे राज्य के स्वामी को अपना बना लिया था। इसी प्रकार वह आत्मदेव जिसकी शक्ति से संपूर्ण संसार स्थिर है और जिसकी शक्ति से संपूर्ण कामनाएँ पूरी होती हैं, उसको कोई विरले ही मांगते हैं और शेप सब संसारी वस्तुओं को, जो बिलकुल तुच्छ, हीन, और अपदार्थ हैं, मांगते रहते हैं।

सिंधु विषे रँचक सम देखें। आज नहीं पर्वत सम पेखें॥

अब प्रश्न यह होता है कि वह आत्मा जो सब को घेरे हुए है, उसके पाने की इच्छा न करने का कारण क्या है?

उत्तर—इसका कारण यह है कि वह आत्मा कोई अन्य नहीं, वरन सब का अपना आप है, इसलिये इच्छा नहीं

होती। यदि कोई अन्य होता तो उसके पाने की इच्छा भी होती। मगर यहाँ पर भी एक बात हरेक की समझ में नहीं आती है कि शास्त्रों में जो आत्मानंद के प्राप्त करने की चर्चा बहुत जगह आई है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि जैसे बाहर के पदार्थों को अलग समझ कर उनके पाने का प्रयत्न किया जाता है वैसे ही आत्मा के आनंद को भी कहीं किसी बाह्य वास्तु में समझकर उसके प्राप्त करने की जिज्ञासा की जावे, बल्कि वहाँ शास्त्रों का यह प्रयोजन है कि आत्मानंद तो आपका सच्चा अपना आप है ही, मगर अज्ञान के कारण भाँति-भाँति की कामनाओं और संकल्पों ने इसको तीक्ष्ण स्वभाव बना दिया है। केवल इस तीक्ष्णता को ही दूर करना है। जैसे सिकंजबीन में भी मिठास होती है, पर सिरके की खटाई मिलने से मिठास ज़रा कम मालूम होती है। इस लिये खाँड की मिठास को अपनी असली हालत पर लाने के लिये केवल यह आवश्यक होता है कि उस में से वह सिरके की खटाई दूर की जावे। ऐसेही आत्मानंद तो आनंदघन है ही, मगर पदार्थों की कामना को भीतर प्रविष्ट करने के कारण ज़रा तीक्ष्ण स्वभाव हो रहा है। केवल इसी तीक्ष्णता को, इच्छाओं के बंद करने से, निकाल देना आवश्यक है जिस में वह शुद्ध खाँड की भाँति आनंदघन अनुभूत होने लगे। इस आनंद के अनुभव करने की शैली यही है कि भविष्य में बाह्य पदार्थों की कामनाएँ बंद कर दी जावें और निज शरीर से जो प्रेम और मोह है, उसको दूर कर दिया जावे, क्योंकि शरीर के साथ संबंध रखने ही से उसके पालने पोसने के लिये और पदार्थों के प्राप्त करने की कामनाएँ उठती रहती हैं। अतः शरीर के साथ बिलकुल संबंध न रखना और "मैं आत्मा ही हूं, शरीर नहीं हूं," ऐसा दिल-

रात अभ्यास करना ही अपने आत्मानंद को उसकी आनंदघन अवस्था में लाना है; और यही अभ्यास या पुरुपार्थ आनंद के प्राप्त करने का ठीक प्रयत्न है। इस प्रकार अपने आत्मा अर्थात् अपने ही स्वरूप के घन आनंद का अनुभव करना ही आत्मा को पाना होता है, कोई बाहर से प्राप्त करना नहीं होता। किन्तु आश्चर्य और शोक का स्थान केवल यही है कि जिस शरीर-संबंधी कामों के पूरा करने का विचार तक नहीं आना चाहिए था, बल्कि उन कामों को भाग्य पर छोड़ देना था, अब उनके पूरा करने के लिये प्रयत्न किया जाता है और इस प्रकार शारीरिक भ्रांति बढ़ाई जाती है; और जिस आत्मिक आनंद के पाने के लिये पुरुपार्थ करना था और शारीरिक भ्रांति दूर करना था, उसको केवल भाग्य पर छोड़ जाता है। इस ढंग से उन्नति के स्थान पर अवनति होती है। उदाहरण में एक कहानी है।

एक मनुष्य को दो रोग थे, एक आँख (नेत्र) का, दूसरा पेट (उदर) का। रोगी हस्पताल में गया और डाक्टर साहब को दोनों रोगों को दिखाया। डाक्टर साहब से आँख के रोग को दूर करने के लिये सुरमा और पेट के रोग को दूर करने के लिये पाचन-चूर्ण लेकर लौट आया, मगर दुर्भाग्य से दोनों पुड़ियों को भूल से उलट-पलट कर दिया। दवाई खाने के समय सुरमे की पुड़िया तो खा डाली और चूर्ण आँख में लगा लिया, जिससे दोनों रोगों की दशा भयंकर होगई। इसी तरह यहां भी इस विषय में सारे काम उलटे हो रहे हैं। क्योंकि जिस शरीर को केवल भाग्य पर छोड़ना था, उसके लिये पुरुपार्थ किया जाता है, अर्थात् आँख की दवा पेट में डाली जारही है; और जिस आत्मानंद के पाने के लिये पुरुपार्थ करना चाहिए था, उसको केवल भाग्य पर

छोड़ा जाता है अर्थात् पेट की औषधि आँख में डाली जा रही है। इस तरह से उन्नति के स्थान पर अवनति हो रही है। ऐसी दशा में क्योंकर आशा की जा सकती है कि आत्मिक आनंद हर एक को प्राप्त हो। प्यारो! यदि आनंद को प्राप्त किया चाहते हो तो उसके पाने के वास्ते अनंत पुरुषार्थ करो, अर्थात् कामना करना बंद करो और शरीर-संबंधी कामों को केवल भाग्य पर छोड़ दो, क्योंकि शरीर-संबंधी काम तो भाग्य के अनुसार अपने आप हो ही जावेंगे। काम अगर है तो केवल यही है कि अपने आत्मा में लीन हो जाओ, अपने स्वरूप में झंडे गाड़ दो और अपने आत्मा रूपी आनंद में मस्त होकर अपनी ईश्वरता की गद्दी को सँभाल लो। केवल तुम्हारे अपने स्वरूप को राजराजेश्वर के सिंहासन पर आसन जमाने की आवश्यकता है, तब सारे काम बिना तुम्हारे संकेत के ही होते हुए दिखाई देंगे। जैसे जज साहब जब अपनी कचेहरी में आते हैं तो उनका काम केवल कुर्सी पर बैठ जाना और संसार के मुक़द्दमों को फ़ैसला करने का होता है, शेष सब काम (कमरे का साफ़ आदि करना, मेज़ पर दावात क़लम रखना और वकील साहब तथा मुद्दई आदि को बुलवाना इत्यादि) अपने आप जज साहब के हाथ हिलाए बिना ही होते रहते हैं। इसी तरह ब्रह्मनिष्ठ होने पर अर्थात् संपूर्ण विश्व के सम्राट् के सिंहासन पर इजलास करने के बाद मुक्त पुरुषों का काम केवल अपने स्वरूप के आनंद में मग्न रहना ही होता है, शेष संसारी काम मारे डर के प्रकृति अपने आप बिना संकेत के करती रहती है। मगर भगवन्! यह अवस्था तब ही होगी जब औषधि अर्थात् पुरुषार्थ का उचित व्यवहार करोगे, अर्थात् शरीर को भाग्य पर और आत्मिक उन्नति को पुरुषार्थ पर छोड़ोगे।

एक बार रोम के लोगों ने ईसा से प्रश्न किया कि क्या हमें बादशाह को कर (ख़िराज) देना चाहिए, या नहीं? प्रश्न इस हेतु से था कि यदि महाराज ईसा यह आज्ञा देंगे कि ख़िराज नहीं देना चाहिए तो झट रोम के बादशाह को ख़बर देंगे कि हज़रत ईसा लोगों को राजद्रोही बनाते हैं, और यदि वह अपने श्रीमुख से यह आज्ञा देंगे कि ख़िराज दे देना चाहिए तो उनके इस वचन को कि "मैं बादशाहों का बादशाह हूँ", या "मुझपर ईमान लाओ," झूठा सिद्ध करेंगे। मगर महाराज ईसा ने इसके उत्तर में एक रुपया हाथ पर रखकर उन प्रश्न करने वालों से पूछा कि प्यारो! पहले यह बताओ कि इस रुपये पर मुहर किस की लगी हुई है? लोगों ने उत्तर दिया कि क़ैसर की। अतः महाराज ने आज्ञा दी कि वह वस्तुएँ जिन पर क़ैसर अर्थात् रोम के बादशाह की मुहर लगी हुई है, क़ैसर के हवाले कर दो; जिनपर ईश्वर की मुहर लगी हुई है, वह ईश्वर के हवाले कर दो। ऐसे ही भगवन्! पुरुषार्थ को कि जिसपर आत्मा की मुहर लगी हुई है, आत्मा के हवाले कर दो; और वह जिसके ऊपर भाग्य की मुहर लगी हुई है, उस शरीर रूपी नक़दी को भाग्य के हवाले कर दो। जब एक मनुष्य उत्तम श्रेणी का काम करता है, तो उसकी अनुपस्थिति में निम्न श्रेणी के सब काम होते जाते हैं। इसी प्रकार ज्यों ज्यों पुरुष अपने पुरुषार्थ से अपने स्वरूप की ओर पग बढ़ाए जाता है अर्थात् उत्तम श्रेणी का काम करता जाता है, संसारी शरीर-संबंधी काम अर्थात् निम्न-श्रेणी के काम अपने आप उत्तम रीति से पूरे होते जाते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

पुरुषार्थ और प्रारब्ध।

[अमेरिका से लौटकर १९०५ में लखनऊ में दिया हुआ
स्वामी जी का व्याख्यान]

असली हवाला या प्रमाण तुम्हें स्वयं होना चाहिए। क्या पुस्तकें बेकार हैं? निस्संदेह पुस्तकों से मुझे सहायता मिली और जो कुछ उन पुस्तकों में लिखा था वह सब अपने अनुभव में लाया। वह पहले मेरे प्रमाण और हवाला थीं और अब मैं स्वयं प्रमाण और हवाला हूँ। रसायन विद्या की पुस्तक विद्यार्थी को सहायता देती है, किंतु विद्यार्थी का अपना अनुभव उसकी सच्ची प्रमाणिकता करता है। वेद या क़ुरान तुम्हें आत्मिक रसायन में सहायक हो सकते हैं, लेकिन तुम्हारा स्वतः का अनुभव असली प्रमाण या हवाला है। आप लोग आज मेरी सब बातों से सहमत न होंगे, खैर आज नहीं तो कल सहमत होंगे, और कल नहीं तो दूसरे जन्म में जाओगे, वहाँ मानना ही पड़ेगा। सचाई की सदैव विजय होगी। असली जाति मनुष्य की तो है ईश्वर, और सारे संसार की शक्तियां उसके आधीन हैं। लेकिन जिसको प्रायः लोग जन वा मनुष्य कहते हैं, मन-बुद्धि, और शरीर है। यह उसी तरह से प्रकृति की शक्ति प्राप्त है जिस तरह से नदी-नाले, बादल, हवा वर्षा और सूर्य हैं। यदि मनुष्य को इन्हीं अर्थों में लें, तो मनुष्य एक निकम्मी पराधीन वस्तु अन्य वस्तुओं की भाँति है। कहते हैं कि गेंद को हाथ में लेकर जब हवा में फेंकते हैं उसमें एक गति उत्पन्न हो जाती है। यदि कहीं वह सचेत हो जाय अर्थात् उसमें चेतना

(कौंशंस) समझने-बूझने की शक्ति उत्पन्न हो जाय, तो वह यही कहेगा कि मैं स्वयं चलता हूँ; लेकिन यह प्रत्यक्ष है कि वह स्वयं नहीं चलता, भिन्न भिन्न शक्तियाँ हैं जो उसे चलाती हैं जिनमें से एक ग्रेविटेशन (आकर्षण शक्ति वा अधः पतनशीलता) है और एक वह शक्ति है जिसने उसमें गति उत्पन्न की थी। मनुष्य भी इसी प्रकार अन्य शक्तियों की तरह है दूसरी शक्तियों की अधीनता में काम करता है। भेद केवल इतना है कि वृक्ष, फल, फूल और वनस्पति में चेतना नहीं और यह सचेत है। वह नहीं कहते कि हम किसी काम को करते हैं, लेकिन यह कहता है कि 'मैं करता हूँ' 'मैं करता हूँ'। वास्तव में वह एकही शक्ति है जो सबमें काम करती है, यद्यपि नाम अनेक हैं। संसार की और वस्तुओं में उसे ग्रेविटेशन (अधः पतनशीलता वा आकर्षण शक्ति) कहो और उसी शक्ति का मनुष्य में चाहे प्रेम नाम रक्खो, प्रकृति में उसे अबज़ों (ग्रहण-शक्ति) कहो और मनुष्य में भक्ति। प्रकृति में जो अट्रैक्शन और रिपल्शन (आकर्षण और क्षेपण वा निराकरण) है, वही मनुष्य में राग-द्वेष है। इसको एक उदाहरण से स्पष्ट किया जायगा। पहाड़ों की चोटियों पर वर्फ़ जमी रहती है और उसी में ग्लेशियर या बर्फ़ की नदी उत्पन्न होती है और रास्तों को काटती-छाँटती, वृक्षों को उखेड़ती-पुखेड़ती आगे बढ़ती चली जाती है। यह किसकी बदौलत? सूर्य की बदौलत, तथा अन्य शक्तियों के भी कारण जो मिलकर काम कर रही हैं। फिर वह आगे बढ़कर नदी बनकर चली। यह नदी क्योंकर चल रही है? वही सूर्य, आकर्षण शक्ति तथा अन्य शक्तियाँ काम कर रही हैं जो वर्फ में कर रहीं थीं। किंतु नदी तरल है, इस लिये सूर्य का उसमें प्रतिबिम्ब पड़ता है। पक्षी, बनस्पति और पाषाण

जो उन्नति कर रहे हैं, वह परमेश्वर की बदौलत, या कई विभिन्न शक्तियों की बदौलत, अविनाशी भगवान् की बदौलत। लेकिन वे (पक्षी पाषाण आदि) जमी हुई बर्फ़ की भाँति हैं और उनमें सूर्य का प्रतिबिम्ब या चेतनात्मा का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। मनुष्य का संबंध अन्य वस्तुओं के साथ वही है जो पिघलती हुई नदीका बर्फ के साथ। इसमें नदी की भाँति एक प्रतिबिम्ब (चेतनता) पड़ रहा है; सचेतन है, अहंता का मादा (बीज या मूल) उत्पन्न हो गया; और कहता है कि यह तो "मैं करता हूँ," "मैं करता हूँ," यद्यपि करनेवाली वही सारी शक्तियाँ हैं। वास्तव में वृक्षों का ईश्वर वही है जो तुम्हारा ईश्वर है, वृक्षों का अंतरात्मा वही है, जो तुम्हारा। इस लिए वृक्ष तुम्हारे भाई हुए, संपूर्ण ईश्वरीय सृष्टि तुम्हारी भाई हुई। यह बात तो प्रकृतिने समस्त ब्रह्मांड में दिखा दी है, और साथही यही दर्जे छोटे पैमाने पर प्रत्येक मनुष्य के जीवन में भी पाए जाते हैं। जब वह बच्चा था तो आत्मा यद्यपि वैसाही था, लेकिन अहंकार या अहंता उसमें नहीं समाई थी। बढ़ते ही मानो पहाड़ों की बर्फ़ पिघल पड़ी और उस नदी में सूर्य की किरणें पड़ने लगीं अर्थात् उसमें चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ने लगा और वह कहने लगा "यह मैंने किया," "मैंने किया," जो बचपन में नहीं कहता था। सुषुप्ति की अवस्था लो; इस अवस्था में भी शरीर कुछ न कुछ बढ़ ही रहा है। इसमें रक्त का दौड़ा बंद नहीं, किंतु इस समय अहंता की अवस्था नहीं। उस समय तो तुम पाषाण या वनस्पति के भाई हो। जब जाग्रत अवस्था में आए तो फिर तरल अवस्था में आगए और किरणें प्रतिबिम्बित होने लगीं, फिर कहने लगे कि, "पुस्तकें मैंने लिखीं", "व्याख्यान मैंने दिया', 'यह मैंने किया', 'वह मैंने किया'। एक बात और विचार करने की है।

जब मनुष्य अति उच्च अवस्था पर पहुँचा हुआ होता है— कवि का उदाहरण ले लो, जिस समय वह अपने विचारों में मग्न हो जाता है—उसे कदापि स्मरण नहीं रहता कि मैं लिख रहा हूँ। अहंता का खयाल ही नहीं। जिस समय एक गणितज्ञ कठिन से कठिन ग्रुत्थियों (घुण्डियों वा उलझनों) को हल कर रहा हो, उस समय मानों उसका मस्तिष्क ईश्वर ने पकड़ लिया है, अहंता नितान्त दूर है। लेकिन निरहंता (देहाध्यास की शून्यता) में हल कर चुकने के बाद फड़क उठा कि वाह क्या! "ग्रन्थी हल की है," 'मैंने की है'। नेपोलियन को देखिए कि युद्धक्षेत्र में खड़ा है, इधर गोला सनसनाता हुआ निकल गया, उधर से सनसनाता हुआ आया, हज़ारों मनुष्य गिर रहे हैं, लेकिन उसे खबर ही नहीं कि क्या हो रहा है, खुदी (अहंता) का नाम ही नहीं, इसकी वही दशा है जैसी ग्लेशियर की हालत। जब अत्युच्च स्थिति पर शक्ति होती है, अहंता नहीं होती। यह बात याद रखने-योग्य है कि जितने बड़े बड़े काम होते हैं, अहंता के बिना होते हैं। और आश्चर्य यह है कि जब अहंता आती है तो हमारे कार्य को रद्दी कर देती है। एक मनुष्य व्याख्यान दे रहा है जिस समय उसे खयाल आया कि मैं अच्छा व्याख्यान दे रहा हूँ, उसी समय से वह बात जाती रही। लड़के ने जिस समय स्कूल में यह खयाल किया कि क्या अच्छी तरह कविता पढ़ रहा हूँ, बस उसी समय मुँह बन्द हो गया। यह अहंता उस मक्खी की भाँति है जो गाड़ी चल रही थी तो घोड़े की पीठ पर बैठी हुई कह रही थी कि गाड़ी मैं चलाती हूँ। मनुष्य में जब अहंता आई, वहीं से "तुम और हो, मैं और हूँ" हो गया। अहंता ही है जिसकी बदौलत मस्तिष्क में यह बात समा जाती है कि "यह हमने किया," यद्यपि अहंता ने कुछ भी नहीं किया। जैसे

कि सूर्य की गर्मी और आकर्षणशक्ति नदी को चलाने के कारण थे, यदि नदी में प्रतिबिम्ब कह दे कि मैं नदी चला रहा हूँ तो क्या आप उसे मानेंगे ? या वह माने जाने के योग्य है ? इसी प्रकार आपकी अहंता नहीं है जो काम करती है। जो काम आप कर रहे हैं या हो रहा है, वह एक परमेश्वर की बदौलत हो रहा है। जैसे लेबरटरी Laboratoy होती है या इनवेंटरी (Inventory), वहां खयाली बातें नहीं हैं, वहां प्रत्येक वस्तु का अनुभव और साक्षात्कार किया जाता है है। वैसे अमेरिका में संकल्प शक्ति (या संकल्प शास्त्र) के अनुभव भी किये जाते हैं। कुछ अनुभव जो राम ने देखे हैं, अब उनकी साक्षी देगा। एक मनुष्य को ऐसी अवस्था में डाल सकते हैं जब अहंता काम न कर सके, अर्थात् नदी बहती जाय और सूर्य का प्रतिबिम्ब न पड़े। यह वह अवस्था है जिस समय मनुष्य हिप्नोटाइज्ड् या साइकोलोजाइज्ड् कर दिया जाता है। राम के सामने एक ऐसे मनुष्य को इस अवस्था में डाला जिसे चौथिया का तप था अर्थात् जिसे चौथे दिन की बारी से ज्वर आया करता था। उसे हिप्नोटाइज्ड् करके उसमें यह खयाल (संकल्प) डाला कि ज्वर दूर हो जाय, और ऐसी चित्तशक्ति से यह खयाल भरा कि उसका प्रभाव हो। फिर उसी अवस्था में ले आए। ज्वर दूर हो गया, किन्तु उसके स्थान में नित्य ज्वर आने लगा। यह खयाल का अपराध नहीं था, वरन उसका अपराध था जिसने खयाल भरा था। कुछ समय बाद उसमें ज्वर बिलकुल छोड़ देने का खयाल डाला गया और फिर जगाया गया। ज्वर बिलकुल दूर हो गया। यह परिणाम इस बात का सूचक है कि आप का शरीर आपके संकल्पों (खयालों) से बना हुआ है। और अनुभव सुनिए। एक व्यक्ति था जिसे सिगार पीने का

बड़ा व्यसन था। उन्हों ने चाहा कि वह स्वभाव बंद कर दें। उसे बेहोशी की अवस्था में डाला और उसमें यह खयाल भरा कि उसने दिन भर में एक ही वार सिगार पिया है। इसके बाद उसने एक इतना बड़ा सिगार बनाकर पीना आरंभ किया जो सब के बराबर था। यह भूल खयाल डालने वाले की थी। फिर दुबारा उसपर अमल किया गया और अभ्यास बिलकुल छूट गया। इन अनुभावों में आरंभ में तो कुछ असफलता रही, मगर पूर्ण सफलता के अनुभव भी यह ही हैं। कल बताया था कि मिस्टर जौन्स उसकी ऐसी अवस्था बदल गई और उसके ख्यालों की शक्तियां ऐसी मरोड़ी गई कि वह डाक्टर पाल की अवस्था में काम करने लगा। यह अनुभव चाहे मानों या न मानों। अभी कुछ काल नहीं बीता कि लोग रेल और तार की आश्चर्य जनक शक्तियों को न मानते थे। न मानों, तुम्हारी इच्छा है। किंतु यह आँखों देखी बातें हैं, उनको राम कैसे कहदे कि नहीं हैं। आपके शरीर की रोगता और अरोगता, आपके मुख मंडल की प्रफुल्लता और मलिनता, और आप के मुख मंडल की रंगत, यह कौनसी शक्तियां हैं जो चला रही हैं। यह शक्तियां ख्याल की हैं। आपकी बाह्य अवस्था और कर्म आप के इस ख्याल की शक्ति पर निर्भर हैं। कल राम ने आपको बताया था कि एक मनुष्य को ऐसी अवस्था में डालकर फ़र्श को झील कर दिया और वह उस में मछलियाँ पकड़ने लगा। यह भी देखा कि एक मनुष्य को ऐसी अवस्था में डाला गया और ख्याल किया कि वह वृत्त है, सिर एक मेज़ पर रक्खा और पैर दूसरी मेज पर, बीच में बोझ रक्खा गया और उस पर लड़के चढ़े, लेकिन झुकने का नाम नहीं, यह क्या? यह सिद्ध करता है कि शारीरिक और बाह्य काम ख्याल पर निर्भर हैं।

जैसी आपकी मती होगी, वैसी आपकी गती होगी।

विचारों की एक अवस्था होती है, जिस में अहंता का साथ न हो। उस अवस्था को कारण शरीर (सब्जेक्टिव माइंड) वा सुषुप्ति कहते हैं। एक अवस्था में अहंता का साथ होता है उसे सूक्ष्म शरीर (आब्जेक्टिव माइंड) वा स्वप्न कहते हैं, जाग्रत अवस्था को स्थूल शरीर कहते हैं। ये तीनों शरीर परस्पर ऐसा संबंध रखते हैं जैसे पानी और बर्फ़ का परस्पर संबंध होता है। जो काम हाथ से होता है, उसका प्रभाव मन पर पड़ता है। और इस समय जो व्याख्यान सुन रहे हो, वह अपनी इंद्रियों से सुन रहे हो, यह शारीरिक क्रिया है। और फिर सूक्ष्म शरीर की क्रिया अर्थात् विचार हो रहा है। जब यहाँ से चले जाओगे, कुछ देर तक प्रभाव रहेगा, फिर यह प्रभाव मन में भी नहीं रहेगा, अंततः यह शक्ति भी कहीं न कहीं रहेगी। अगर तुम्हारे पास न रही, तो फिर यह शक्ति कहां रहेगी? यह सुषुप्ति अवस्था या कारण शरीर में रहेगी। वहां का जाना यों स्वीकार करेंगे। एक झील है, उस में बहुत सी वस्तुएँ गिरीं। कुछ देर ऊपर रहीं, फिर तह में जम गईं। अगर हिलाते हैं तो सतह (तल) पर आ गईं। राम हिंदुस्तानी बोल रहा है, अँगरेज़ी-फ़ार्सी मन की तह में है। मनकी झील को हिला दें, तो सतह पर आ सकती हैं। जिस समय आप स्वप्नमय वा मनोमय जगत् में होते हैं तो कई बार जोश आ जाता है कि 'मैं यह काम करूँगा, वह काम करूँगा,' मानो यह शक्ति बाहर से आई, इस तरह यह आपको गति में डाल देती है। यह क्या हुआ? किसी दूसरे ने यह ख़याल दिला दिया या भीतर से उत्पन्न हुआ? राम स्पष्ट करके दिखादेगा कि राम के सामने यह अनुभव हुआ। एक लड़का था। हिप्नोटाइज्ड किया गया और उस से कहा कि "देखो जिस

समय तू जाग पड़ेगा, हम ताली बजाएँगे, साथ ही इसके तुम पानी की ओर जाना और नदी के पास एक छड़ी पड़ी है उसे उठा लेना और नाचना और गाना, वहाँ से लौटकर आकर बैठ जाना "। यह कथन कारण-शरीर में डाला गया जिस में यह ख़याल जम गया, लेकिन जागकर वह बात भूल गया कि किसी ने कुछ कहा था। भूल जाने के यह अर्थ हैं कि झील की तह में वह बातें थीं उसे ख़बर ही नहीं रही। जिस समय तह हिला दी गई अर्थात् ताली पिटी पश्चिम की ओर चला और छड़ी उठाली, सिर पर रक्खी, नाचा, गाया और लौट आकर बैठ गया। उससे पूछा जाता है, यह क्या है ? हमने तुझे ऐसी अवस्था में न समझाया था, लेकिन वह मानता ही नहीं। वह कहता है कि यह मेरे मन का ख्याल था, मेरा यह जोश था, मेरी यह मौज थी। इसी प्रकार प्रायः हम काम कर बैठते हैं, किंतु उसका कारण नहीं मालूम होता। अदालत में प्रायः कारण पूछा जाता है। वह लोग साइकोलोजी के सिद्धांत ही को नहीं जानते। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक काम का कोई न कोई ज्ञात कारण ही हो।

भाग्य क्या है ?—प्रारब्ध या कर्म, शाब्दिक अर्थ क्रिया, वा काम। क्या काम वह है जो शरीर से किया जाय ? काम की परिभाषा वह गति है जिससे मन का संबंध हो। कर्म वह है जिससे मन को लगाव हो। असली कर्म वह ख़याल है जो मन वा सूक्ष्म शरीर की तह में है। अतः हमारे ख्यालों से भाग्य बना हुआ है। इसके संबंध में एक बात ध्यान से सुनिए। हिन्दू कहते हैं कि चौरासी लाख चक्र में होकर मनुष्य मनुष्य की योनि में आया है। evolution (परिणामवाद)

का प्रश्न हद दर्जे तक पहुँचा। अमेरिका में डारविन के मत की व्याख्या उत्तम रूप से की गई, वहाँ एक अद्भुतालय (अजायबघर) है जहाँ माता के पेट का एक दिनका बच्चा, दो दिन का बच्चा, तीन दिन का बच्चा, इसी तरह पर नौ महीने तक के बच्चे शीशियों में रक्खे हुए हैं। आप विचार करें तो पहले मेंढक, मछली और बंदर आदि के रूप से वह गुज़र लेता है तब मनुष्य होता है। यह मामला है कि प्रकृति ने हमको दिखा दिया है कि दायरे (वृत्त) के भीतर दायरा है, प्याज के छिलकों की भाँति एकके भीतर एक मौजूद है, या द्रौपदी के चीर भाँति सारी में नारी और नारी में सारी है। एक ही नियम है जो सारे पर्दों की तहों में चल रहा है। वही नियम मनुष्य पर चलता है। जब मनुष्य माता के उदर में आता है, तो नौ मास के समय में सारी अवस्थाओं को पार कर जाता है। जैसे बी० ए० की परीक्षा के पहले लड़के पूरी किताबें थोड़े समय में दोहरा जाते हैं, शरीर की बनावट में यह पाया जाता है कि आपके कारण शरीर में पिछले जन्मों के अभ्यास संचित हैं। यह जो आप सुना करते हैं कि एक मनुष्य ने अपने को मुर्दा बना डाला है, नाड़ी और हृदय की गति बंद है। लोग कहते हैं कि वह मर गया और फिर जी उठा। इसके अर्थ यह हैं कि मेंढक आदि के जन्म में जो अभ्यास था, उसको दोहरा लिया। सिद्धी, सिद्धी, लोग बहुत कहते हैं, इनके पीछे पड़ने का नाम उन्नति नहीं है, वरन् ऐसा करने से तुम अपनी अवस्था को रीछ और मेंढक आदि की अवस्था में डाल सकते हो जिन में अब भी बहुत शक्तियाँ वर्तमान हैं, जो सर्व-साधारण में सरल नहीं हैं। देखो, कुत्ता दूर से सूँघ लेता है, यदि तुम यह शक्ति प्राप्त करो, तो यह कुछ उन्नति नहीं है, वरन् बात का

दोबारा ख़याल करना है। आपकी विचार-शक्ति सब कुछ कर सकती है। राम बतलाएगा कि किस ओर विचार लगाओ। शतरंज का उदाहरण लो। जब तक कुछ मोहरे मारे न जायंगे, जीतना संभव नहीं। परिणाम यह निकलता है कि यदि सफलता प्राप्त करना है, तो कुछ वस्तुओं को छोड़ो और कुछ वस्तुओं को लो। इस लिये कि शक्ति अर्थात् प्रकृति उच्च स्वर से कह रही है कि समय के साथ परिवर्त्तित हो या नष्ट हो। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु से, तारों से, वृक्षों से, पत्थरों से पाठ सीख सकते हो। ज़रा ग़ौर से देखो, असभ्य लोगों को कहते हो कि परिणामवाद वा विकासवाद की उन्नति की दौड़ में असभ्य लोग बहुत पीछे हैं। किंतु राम ने देखा है कि उनके नेत्रों में इतना प्रकाश है कि मील दो मील की दूरी से हरे वृक्ष पर हरा तोता देख सकते हैं, पैरों में यह शक्ति है कि हरिन को दौड़ कर पकड़ सकते हैं, हाथों में यह शक्ति है कि सिंह से बिना शस्त्र के लड़ते हैं; किंतु सुसभ्य मनुष्य के न हाथ में न पैर में और न आँख में इतनी शक्ति है। इसका कारण क्या है? कारण यही है कि वे लोग इन [अंगों] को व्यवहार में लाते हैं, इसके बिना वे जीवित नहीं रह सकते। उनकी संतान भी वैसी ही होती है। सुसभ्य मनुष्य असभ्य की तरह नहीं दौड़ सकता है। जब जाना हुआ, गाड़ी घर पर तैयार है। अमेरिका में दो-दो मिनिट पर रेलें ऊपर-नीचे और भूमि पर चलती है, इसलिये अमेरीकन को पैरों का व्यवहार कम करना पड़ता है। रेलें मानों उन्हीं की बढ़ी हुई टाँगें हैं। असभ्य पुरुष हाथ से काम लेते हैं सुसभ्य उसके स्थान में शस्त्रों से। जब आँख दुर्बल हुई उन्होंने ऐनक लगाई, दूरबीनों का आविष्कार किया कि दूरसे दूरकी वस्तुएँ दिखाई दें। अतएव ज्ञात हुआ कि सुसभ्य लोगों ने

हाथ, पैर और आँख की मुहरों को मरवा डाला और मस्तिक के मुहरे को जीवित रक्खा। ऐसे-वैसे मुहरे को पटवाना ही अच्छा है। यदि असभ्यों की तरह इन शक्तियों को वर्तमान रक्खा जाता तो जीवन भार रूपवा संकट रूप हो जाता। यह देखिए कि विकासवाद के वृक्ष की शाखाएँ किस ओर जा रही हैं। मनुष्य को कहते हैं कि मनुष्य सारी सृष्टि का निचोड़ है, यह एक सीमा तक सत्य है. क्योंकि सारे संसार की अवस्थायें जब उसके मस्तिष्क में आ गईं, तब यह सारे संसार का ज्ञानवाला मनुष्य उत्पन्न हुआ। यहाँ तक विकासवाद की सीमा है, किंतु अब किस ओर मुख है। संसार की गति (कृत्यों) की अन्तिम अवधि (अवसातन भूमि) क्या है? एक और अवस्था आती है जिसमें मनुष्य केवल बोध से नहीं वरन् हृदय से सारे संसार को अपना आप समझने लगता है। सेरिब्रम (मस्तिष्क) में सारा संसार सभा जाता है, केवल शिर और मस्तिष्क ही नहीं वरन् हृदय, जिगर, नस, नाड़ी प्रत्येक रोम में आपके सेरिब्रम (cerebrum) में सारा संसार समा जाता है ; आपमें वह अवस्था आ जाती है कि सारा संसार मेरा ही शरीर है, ये पशुपक्षी, ये वृक्ष पर्वत मेरी ही आत्मा हैं, इस नदी में मेरी ही नाड़ियों का रक्त बह रहा है, यह सूर्य यह चन्द्रमा मेरी ही आँखें हैं, मेरा ही हृदय इन सब के छातियों में धड़क रहा है। प्यारे! यह धारना मन से मिटा दो कि तुम और हो और वह और हैं, तुम और हो और शेष देश के मनुष्य और हैं, जो सब में वह तुम हो जिस देश के लोग इस सत्यता को व्यवहार में लाते हैं, वही जाति शेष रहती है। जैसे कल राम ने बताया था कि जापानियों ने ब्रह्मविद्या पर व्यावहारिक रूप से अमल किया। जो लोग व्यावहारिक रूप से दूसरों की आत्मा को अपनी आत्मा मानते हैं, वही

जीवित रहते हैं, तुम्हारी रक्षा का भी उपाय यही है। आपका ख्याल (आकर्षण शक्ति) यह नियम बताता है कि कई शक्तियां जो परस्पर मिलकर काम कर रही हों उन शक्तियों के फल (परिणाम) का झुकाव बड़ी शक्ति की ओर होगा। जब वह शक्ति कम हो जायगी तो उस से कमज़ोर शक्ति की ओर झुकाव होगा। ऐसे ही आपके भीतर जो ख्याल अधिक दृढ़ है, पहले वह अमल करेगा, तत्पश्चात् दूसरा। अब यह देखा जाता है कि भीतरी शक्तियों का बाहरी शक्तियों से क्या संबंध है। यह लैम्प जो जल रहा है और चहुँ ओर की हवा से उस में ऑक्सीजन खिंचकर आ जाती है। जो भीतरी शक्तियें हैं, वे विशेष आकर्षण से बाहर की शक्तियों के साथ संबंध रखती हैं। जैसा संकल्प होता है, वैसा ही सामान प्राप्त हो जाता है। पाज़िटिव (स्थिर) इलेक्ट्रीसिटी के साथ नेगेटिव (चंचल) इलेक्ट्रीसिटी स्वयं उत्पन्न हो जाती है। यह प्रकृतिका नियम है। इधर लड़कियाँ उत्पन्न होती हैं, उधर प्रकृति लड़के भी उत्पन्न करती है। आप जानते हैं कि फूलों में भी नर-मादा (स्त्री-पुरुष) होते हैं। गोमती नदी के किनारे किसी स्थान पर मादा फूल है, किसी जगह नर फूल है। मधुमक्खी के द्वारा नर फूल का नर भाग मादा फूल तक पहुँचता है। निदान जब आवश्यकता या इच्छा होती है तो सामान अपने आप प्राप्त हो जाते हैं। यही नियम आपके लिये है। जैसे आपके भीतरी संकल्प होंगे, वैसे ही बाहरी ख्याल उत्पन्न हो जायँगे। जब हिंदू-मुसलमानों ने मंदिर और मसजिदों में यों प्रार्थना की कि हम दास हैं, हमको नौकर राखो जी, मैं दास, मैं दास, मैं पापी, मैं अपराधी, तो आकर्षण-नियम को पूरा करने के लिये प्रकाश स्वरूप ज्योतिषां ज्योति रूप परमेश्वर ने गोरे चिट्टे चमकते दमकते

मुग़लों और अँगरेज़ों के तेजस्वी शरीर बनाकर हमारी कामनाएँ पूरी कीं और दास बना लिया। इसलिये यदि ग़रीब हो तो अपने बनाए हुए। अपने ख़याल से क़ैद में डाल दिया और अपने ही ख़याल से छुटकारा हो सकता है।

फिर देखिए, कहाँ तक स्वतंत्रता है और कहाँ तक परतंत्रता? कहाँ तक पुरुषार्थ और कहाँ तक प्रारब्ध है? रेलगाड़ी की पटरी की कैफ़ियत है। रेल स्वतंत्र भी है और परतंत्र भी। स्वतंत्र तो ऐसी कि फुर फुर चलती है और परतंत्र यों कि लकीर की फ़क़ीर है। इसी तरह आपके ख़यालों के साथ मस्तिष्क में पटरियां पड़ जाती हैं और बाहर से साज़ और सामान प्राप्त हो जाते हैं, और वह (affinity) संबंध या संपर्क बाहर के सामान इकट्ठा कर लेती है, तो भविष्य के लिये उन पटरियों पर रेल चलाना सहज हो जाता है। और यह भी सिद्ध है कि पुरानी पटरियाँ उखड़ सकती हैं। रेशम के कीड़े का उदाहरण लो कि स्वतंत्र भी है और परतंत्र भी। यह रेशम के निकालने में स्वतंत्र है और जब निकाल चुका तो उस कोए (रेशम के कोश) में फँसकर बद्ध हो जाता है। ऐसा ही तुम्हारा उदाहरण है कि—

"रोशनी-ए-तबा तो बर मन बला शुदी।"

अर्थात्—मेरी ही बुद्धि की योग्यता तो मुझ पर आफ़त हो गई। तुम्हारी स्वतंत्रता तुम्हें परतंत्र बना रही है। एक मनुष्य ने तमस्सुक लिख दिया कि इतने दिनों में रुपया दे दिया जावेगा। रुपया पैदा करने में स्वतंत्र था, तमस्सुक लिखने में स्वतंत्र था और केवल अपने लिखने से आप बद्ध हो गया। इसी तरह मनुष्य स्वतंत्र होता हुआ भी अपने कर्म से आप बद्ध हो जाता है। कर्म अर्थात् अमल इसके लिये बंधन हैं।

फिर प्रारब्ध की अधीनता में भी तुम स्वतंत्र हो। लोग आपत्ति करते हैं कि यदि ईश्वर एक है तो यह क्या कि किसी को अंधा और किसी को लूला उत्पन्न किया, किसी को अमीर और किसी को गरीब बनाया? राम कहता है कि यदि ईश्वर और हो और तुम्हारा स्वरूप और हो, तो यह धब्बा अवश्य आएगा और उसकी कृपालुता में अंतर पड़ेगा, क्योंकि उसी पिता के समक्ष एक लड़का फूलों के निकट है, दूसरा लड़का काँटों में गिर रहा है, यह क्यों किया? उसमें इतनी कृपालुता न थी? उसमें बचाने की क्या शक्ति नहीं? यदि ईश्वर और होता, तुम उसके बच्चे होते, तो ईश्वर के ऊपर बड़ा अंतर आ सकता है। किंतु तत्त्व यह है कि वह ईश्वर तुमसे अलग ही नहीं है। यदि एक मनुष्य स्वयं ही नदी में गिरे, स्वयं ही श्मशान में जावे और स्वयं ही पागलखाने को, तो वह अत्याचार नहीं है। वही ईश्वर उधर अँगरेज़ है, वही ईश्वर इधर मुसलमान है, वही ईश्वर हिंदू है, वही धनी वही निर्धन, वही जिसको तुम पिता कहते हो पुत्र बनकर प्रकट हो रहा है। एक और बात सुनिए। सूर्य का प्रकाश सब जानते हैं कि श्वेत है, किंतु जब प्रकाश को (prism) तिकोन शीशे से देखते हैं, तो मालूम होता है कि यह धोका था। यहाँ सात रंग दिखाई देते हैं, यह क्या बात है? सात रंग और फिर सफ़ेद। कारण ज्ञात हो या न हो, चाहे आप कुछ भी नहीं जानते, पर यह बात माननी पड़ेगी। तुम कहते हो कि यह फूल सफ़ेद है, यह फूल गुलाबी है, यह पत्ता हरा है। साइंसवाले कहते हैं यह कुछ भी नहीं। वह सिद्ध करके दिखा देते हैं। एक फूल अँधेरे में ले जाओ। फिर देखो वह वैसा ही मुलायम है, उसमें सुगंध भी वही है, वह ठंडा भी वैसा ही है, उसमें पंखड़ियाँ भी

उतनी ही है, लेकिन उसका रंग कहाँ गया? रंग फूल में है ही नहीं, वह प्रकाश का रंग था प्रकाश के साथ चला गया। पत्तों में कहते हो कि हरा रंग है, पत्तों पर एक प्रकार का मसाला या शक्ति है जैसे फ़ोटोग्राफ़ के प्लेट पर हुआ करती है, जिसने छः रंगों को खा लिया या सोख लिया, लेकिन एक रंग, जिसको नहीं खाया, यही वह रंग है जो दिखाई देता है और जिसे हरा रंग कहते हैं। अब देखिए प्रकाश में सात रंग हैं। इन में काला नहीं गिना जाता। काला रंग वह है जिसने प्रकाश के सातों रंगों को खा लिया, सफ़ेद जिसने एक रंग को भी न लिया, सब त्याग दिया। प्यारे! संसार में जितने रंग दृष्टिगोचर हो रहे हैं—यह शक्तियाँ, यह बुद्धि, यह समझ, यह विचारशीलता, ये सब शक्तियाँ एक ही परमात्मा एक ही राम की हैं। यों देखो तो सतरंगा और उस तरह देखो तो सारे रंग उसी के। उसी रंग का नाम माया है। इस संसार में कहते हैं कि यह मनुष्य शक्तिमान् है, यह भी कहते हैं कि दाहिना हाथ अधिक शक्तिमान् होता है। इसलिये शक्तिमान् है कि वह उस हाथ की शक्ति को त्यागता रहता है अर्थात् व्यय करता रहता है। फूल जिस रंग को त्यागता है; वही रंग उसका होता है। प्यारे, जिस वस्तु को तुम त्यागोगे, वही तुम्हारे पास आवेगी। जिस वस्तु से तुम बेपरवाही करोगे अर्थात् मुख मोड़ोगे वही उपस्थित होगी। सूर्य के प्रकाश में यदि तुम छाया का पीछा करोगे तो तुम्हारे आगे आगे भागेगी, और जिस समय तुम उसे त्यागोगे अर्थात् सूर्य की ओर मुख करके दौड़ोगे, तो वह तुमको पकड़ने दौड़ेगी।

"गुज़श्त अज़ मतलब तमाम शुद मतलब।" जिस रंग

को खाते हो, वह नष्ट हो जाता है और जिसको त्यागते हो, वह तुम्हारा हो जाता है। जिस समय वह इच्छा होती है कि तुम्हारा सम्मान हो और जब तुम दूसरों का सम्मान करते हो, तो तुम्हारा अपने आप सम्मान हो जाता है। जिस समय लोगों को प्यार देते हो तो चारों ओर से प्रीति तुम्हारी ओर दौड़ी हुई आती है। काले वह हैं जिन्होंने सारे रंगों को अपने अहंत्व में सोख लिया और कहा "मैं और हूँ", "वह और है", जैसे वह स्वार्थी लड़का जिसका मैंने कल ज़िक्र किया था और जिसने जापान में किताब का वर्क़ चुराया था। और गोरे वह हैं जिनका अमल त्याग-त्याग-त्याग पर है। जिनका कथन यह है कि सब मेरे रंग सब के रंग, जान मेरी सब की जान, माल मेरा सब का माल, मेरा शरीर सब का शरीर, मेरी विद्या सब की विद्या, मेरा ज्ञान सब का ज्ञान। जो मनुष्य सारे रंगों को त्यागता है, उसका आत्मा सब का आत्मा है। जिसे फिर न कुछ ढूँढ़ना है और न कुछ लालसा है! वरन् जिसकी—

> आरज़ूए-विसाल पर्दा है, आरज़ू है कि आरज़ू न रहे।
> जुस्तजू भी हिजाबे-हुसनी है, जुस्तजू है कि जुस्तजू न रहे।
> तू को इतना मिटा कि तू न रहे, और तुझ में दुई की बू न रहे।

अर्थात् मिलने की इच्छा ही भेद है, इसलिये ऐसी इच्छा हो कि इच्छा ही न रहे, जिज्ञासा भी एक सुंदर परदा है, इसलिये ऐसी जिज्ञासा हो कि जिज्ञासा ही न रहे, तू के भाव को इतना मिटा कि परिच्छिन्न तू भाव न रहे और तुझमें द्वैत की गंध तक न रहे।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

स्वतंत्रता (मुक्ति)

[भगवान् राम के हस्त-लिखित लेखों में से एक लेख जो सन् १६०१ में रिसाला अलिफ के नं० १३ में प्रकाशित हुआ]

स्वतंत्रते ! स्वतंत्रते ! स्वतंत्रते ! हाय लिबर्टी ! हाय फ्रीडम ! बच्चों को सप्ताह के दिन गिनना कौन सिखाता है ?—(छुट्टी का दिन) रविवार। अध्यापक लोग विद्यार्थियों को छुट्टी देने से देखने में इन्कार किया करते हैं। पर छुट्टी का स्वाद कोई उनके जी से पूछे। दफ़्तरवालों के पीले मुखों पर किस वस्तु के नाम से चमक आ जाती है ?—छुट्टी के नाम से। संसार के इतिहास में बड़े-बड़े विप्लव एवं युद्ध-कलह किस बात के लिये हुए ?—स्वतंत्रता के लिये। कोटि-कोटि प्रजा की रक्त-नदी किस बात पर बही ?—स्वतंत्रता पर। सामान्यतः सारे धर्म और विशेषतः हिंदू-शास्त्र किस ज्योति पर अपना तन, मन, धन पतंग बनाया चाहते हैं ? संन्यासी अपना सर्वस्व किस पर न्योछावर करता है ?—मुक्ति पर। जिसका आभिधानिक अर्थ, अर्थात् वास्तविक अर्थ है—'स्वतंत्रता' !

१—वल वे आज़ादी ! खुशी की रूह उम्मेदों की जाँ।
बुलबुला साँ दम से तेरे पेच खाता है जहाँ ॥

२—मुल्के-दुनिया के तेरे बस इक करश्मा पर लड़े।
ख़ून के दरिया बहाए नाम पर तेरे मरे ॥

३—हाय मुक्ती ! रस्तगारी ! हाय आज़ादी नजात।
मक़सदे-जुमला मज़ाहब है फ़क़त तेरी ही ज़ात ॥

४—उँगलियों पर बच्चे गिनते रहते हैं हफ्ते के रोज़।
किस दिन को आयगा यकशंबा[१] आज़ादी फ़रोज़॥
५—हम वरांडों के मुक़ैयद[२] सच्ची आज़ादी से दूर।
हो गए नश्शे पे लट्टू वहरे-आज़ादी ज़रूर॥
६—साहबो! यह नींद भी मीठी न लगती इस क़दर।
क़ैद-तन से दो घड़ी देती न आज़ादी अगर॥
७—क़ैद में फँसकर तड़पता मुर्ग़ है हैरान हो।
काश! आज़ादी मिले तन को नहीं तो जान को॥
८—लम्हा जो लज़्ज़त मज़े का था वह आज़ादी का था।
सच कहूँ, लज़्ज़त मज़ा जो था वह आज़ादी ही था॥
९—क्या है आज़ादी! जहाँ जब जैसा जी चाहे, करें।
खाना पीना ऐश गुलछर्रों में सब दिन काट दें॥
१०—राग शादी नाच इशरत जलसे रंगारंग के।
बंगले बाग़ात—आली योरोपियन ढंग के॥
११—क़तअ[३] टोपी की नई फ़ैशन निराला बूट का।
दिलकशी[४] बेदाग़ खिलना बदन पर वह सूट का॥
१२—दिल को रंगत जिसकी भावे शादी बेखटके करें।
धर्म की आईन[५] चुपके ताक पर तह कर धरें॥
१३—खच्चरें फ़ीटन के आगे कोचवाँ का पोश पोश।
अबलक़ों[६] का वह निकलना हिनहिनाना जोश जोश॥
१४—कोट पहनाता है नौकर जूता पहनाए गुलाम।
नाक चिढ़ाता है आक़ा "जल्द दे......हराम"॥

---

(१) रविवार। (२) अधीन। (३) आकार, ढंग। (४) चित्त-आकर्षक। (५) नियम, कानून, धर्म शास्त्र। (६) घोड़ों।

१५—मुँह में गटगट सोडावाटर या सिगारों का धुवाँ।
ज़ोफ़१ की दिलमें शिकायत रामकी अब जाय२ कहाँ॥

१६—क्या आज़ादी है? हाय! यह तो आज़ादी नहीं।
गोए३ चौगाँ की परेशानी है, आज़ादी नहीं॥

१७—अस्प४ हो आज़ाद सरपट, क़ैद होता है सवार।
अस्प हो मुतलक़ अनाँ५ हैरान रोता है सवार॥

१८—इंद्रियों के घोड़े छूटे बागडोरें तोड़कर।
वह मरा, वह गिर पड़ा, असवार सिर मुँह फोड़कर॥

१९—६ताज़ी तोसन ७तुंदख़ू पर ८दस्तो-पा जकड़े कड़े।
ले उड़ा घोड़ा मैज़प्पाँ९ जान के लाले पड़े॥

२०—जाने-मन! आज़ाद करना चाहते हो आपको।
कर रहे आज़ाद क्यों हो आस्तीं के साँप को॥

२१—हाँ वह है आज़ाद जो क़ादिर१० है दिलपर जिस्मपर।
जिसका मन क़ाबू में है, क़ुदरत है शक्लो११ इस्मपर॥

२२—ज्ञान से मिलती है आज़ादी यह राहत१२ सरबसर।
वार कर फेंकूँ मैं उसपर दोजहाँ का मालो-ज़र॥

२३—*आज़ादा-अम आज़ादा-अम अज़ रंज दूर उफ्तादा-अम
अज़ दृशवए-ज़ाले-जहां आज़ादा-अम वालास्तम॥

पहिली टिप्पणी—'मैजपा का दंड।

तेज़ी और तुंदी का पुतला, आफ़त का परकाला एक

---

(१) निर्बलता। (२) स्थान। (३) खेल के गेंद। (४) घोड़ा। (५) नितांत बद्ध, पूरा अधीन वा रुका हुआ। (६) अरब का सरकश घोड़ा। (७) तेज स्वभाव वाला। (८) हाथ पैर। (९) सवार का नाम। (१०) वशी अर्थात् इन्द्रिय, मन को अपने वश में रखने वाला। (११) नाम रूप। (१२) आनन्द, सुख।

*मैं स्वतन्त्र हूँ, मैं स्वतन्त्र हूँ, शोक से नितान्त परे हूँ संसार रूपी बुढिया के नखरों के प्रभाव से मुक्त और निर्लिप्त हूँ।

घोड़ा जिसपर अभी ज़ीन नहीं डाला गया था, जंगल से छांटकर लाया गया। उसपर मैज़पा को सवार करके हाथ पैर खूब मज़बूत कस दिए गए कि गिरने न पावे और फिर उस नख-शिख-दुष्ट घोड़े को कड़ी-चाबुक मारकर 'कडुवा करेला नीम चढ़ा' की आपत्ति मोल ली। बिजली की गति से वह घोड़ा 'मेज़पा' को ले उड़ा। नदी नाले चीर गया। खाइयाँ फलांग गया। दीवारों पर से कूद गया। चल, चल, चल, चला चल। रेगिस्तान पार हो गया। कहीं मंज़िलें आन की आन में काट गया। चुटकी बजाते कहीं का कहीं जा निकला। बेचारा विपत्ति का मारा सवार अधमर हो रहा है। कभी शिर दाहिने उछल उछल पड़ रहा है, कभी बाएँ को, कभी आगे की ओर, कभी पीछे। हे भगवन्, यह कैसी सवारी है! शत्रु को भी नसीब न हो। वृक्षों की रगड़ से शरीर छिल गया, काँटों से तन चलनी हो गया। घोड़े की भाँति मुँह से झाग (फेना) निकल पड़ी। शरीर से रक्त का पसीना बह चला। हे भगवन्, इस यात्रा का अंत भी कहीं होगा। और पहुंचना कहां है? फूट गया भाग्य।—

> खून रोता है जिगर, यह देख आजादी तेरी।
> हाय! 'मेजपा' यह आजादी है बरबादी तेरी॥

दूसरी टिप्पणी—एक भोजन में बच्चों को देखा कि मिठाइयां मुँह में डालने के स्थान पर जेब में ठूँस रहे थे। एक मसखरा बोल उठा—प्यारो! कपड़े की जेब में पड़ी हुई मिठाई स्वाद न देगी, न क्षुधा निवृत्त करेगी। मिठाई को पेट के थैले में भरो। कौन मिठाई या उत्तम पदार्थ है जो स्वतंत्रता से बढ़कर स्वादिष्ठ है। प्यारो, यह मिठाई शरीर रूपी वस्त्र की जेब में भरी हुई क्षुधा को कदापि नहीं

हटाने की। उसको अपने सच्चे थैले में भरो। घोड़े की स्वतंत्रता से आपको (जो कि सवार हो) बंधन प्राप्त होगा।

तीसरी टिप्पणी—एक पठान के लड़के को किसी बात पर उसके गुरु ने बहुत झिड़का। पठानपुत्र ने आँखें लाल करके झट तलवार निकाली। मौलवी साहब के होश उड़ गए। आगे उठ दौड़े। नंगी तलवार हाथ में लिए पठानपुत्र पीछे लगा। इतने में संयोग से बड़े खाँ साहब घटनास्थल पर पधारे। दूर ही से पुकारा—"ओ शिक्षक! ओ शिक्षक! ठहरियो। ठहरियो। मेरे बेटे का पहला वार है। खाली न जाय।" नवयुवको! स्वतंत्रता चाहते हो, पर बताओ तो सही, स्वतंत्रता तुम्हें दरकार है कि तुम्हारे चतुर शिष्य (अहंकार) को? मांगना अपने लिये और देना दूसरों को। खैर, हाथ खुलने दो उसका। तुम्हीं पर हाथ साफ़ होगा। वासना स्वतंत्र होगी, तुम गए बीते।

चौथी टिप्पणी—सन् १८५७ ई० के ग़दर के दिनों में एक नवाब साहब के प्रासाद पर बाग़ी सिपाहियों ने हल्ला किया। घर का बड़ा फाटक भीतर से बंद था, किंतु घर के पिछली ओर एक पतली गली में एक दरीची खुलती थी। नवाब साहब का पलंग उस दरीची के पास बिछा था। यह देखकर कि बाग़ियों ने बड़ा फाटक तोड़ना आरंभ कर दिया है, नवाब साहब को जान बचाने के लिये इस दरीची से कूद कर भाग निकलने की सूझी। किंतु वह नवाब साहब, जिनके लिये दो मनुष्यों के कंधों पर हाथ धरे बिना बग्घी में सवार होना अपनी शान को बट्टा लगाना था, आज अपने आप कूदकर कैसे जायँ; वह नवाब साहब, जिनके विचार में पैदल चलना वैसे ही बुरा और सभ्यता के विरुद्ध

था जैसे बंदर का उछलना. आज अपने आप भाग कैसे निकलें। नौकर को पुकारा—"अलीम! ओ अलीम! अरे जल्द आओ। हमें जूता पहना दे।" जब किसी की अपनी जान पर आ बनती है, तो दूसरों को बचाना भूल जाता है। भय के मारे अलीम की दृष्टि में बागियों की चमकती हुई बर्छियां और तलवारें नाच रही थीं। रंग बदल गया था। काटो तो खून नहीं। जब नवाब साहब ने बुलाया, तो दरीचे को देखते ही अलीम को अपनी रक्षा का उपाय सूझ पड़ा। जूता तो नवाब साहब को पहनाया नहीं, सीधा दरीचे के पास चला गया और कूदकर झट पार। वह गया, वह गया। नवाब साहब गालियों की झाड़ बांधते ही रह गए। फिर दूसरे नौकर को बुलाया—"कलीम! ओ कलीम!! अजी आइयो। अरे जूता, जूता। कलीम आया?" ऐसी विपत्ति के समय जूता कौन पहनाता। कलीम भी झट दरीचे में से कूदकर चलता बना। तीसरे नौकर सलीम को बुलाया और दीन वाणी में कहा कि ज़रा जूता पहना दो। इतने में बड़ा फाटक आधा टूट चुका था। सलीम मियां के हाथ-पैर फूल रहे थे। उसने सुना ही नहीं कि नवाब साहब ने क्या हुक्म दिया। हलचली में दरीचे से कूदा और भागा। हाय विपत्ति! तिलंगे भीतर घुस आए। नवाब साहब के प्राणों की कुशल नहीं।

महाशयो, धर्म से बताना कि फ़ैशन की अधीनता, जो जूता पहनना ही तो क्या बात बात में औरों का मुहताज (अधीन) बनाती है, क्या यह अमीरी है? ऐसे नवाब साहब मालिक और स्वामी थे अथवा नौकरों के नौकर (dependent)? दोहाई है! इस स्वतंत्रता के रूप में बन्धन के लिये दोहाई

है। जो व्यक्ति अविद्या के दांव पेच में फँसकर इस धोके-बाज़ की चहुरंगी मौजों (freaks) को पूरा करने के पीछे दौड़ता है, उसे यह स्त्री पेच खाती है। वह स्वतंत्रता का दावा करने का अधिकारी नहीं।

पाँचवीं टिप्पणी—वेदांत शास्त्र पढ़ने बैठे। जम्हाइयाँ पर जम्हाइयाँ आनी आरंभ हो गईं। मन कभी कहीं जाता है कभी कहीं। ध्यान लगता ही नहीं। तबियत बेबस है। मन रूपी घोड़ा या नौकर अधिकार में नहीं है। उसे कहा जाता है—"कर यह काम।" वह सुनता ही नहीं। ऐसा पुरुष मालिक, स्वाधीन वा स्वतंत्र कहला सकता है?—कदापि नहीं। जिसका अपने घर ही में अधिकार नहीं चलता, वह स्वाधीन क्या खाक होगा।

छठी टिप्पणी—देश, काल और वस्तु तीनों प्रकार के बंधनों में बद्ध अर्थात् आत्मज्ञान से शून्य पुरुष कभी स्वतं-त्रता का आनंद भोग सकता है?—कदापि नहीं। तीनों बंदी-गृहों में बद्ध वा आसक्त को स्वतंत्रता की डींग मारने का कभी अधिकार है?

सातवीं टिप्पणी—स्वतंत्र वही है जो देश, काल और वस्तु से मुक्त है। 'स्वामी' वही है, जो तत्ववेत्ता वा यति है। राजराजेश्वर वही है, जो स्वराट् है। गंगा विना यत्न अपने आप शीतल रहती है। सूर्य सदैव प्रकाश ही करेगा; कभी अंधकार नहीं कर सकता। इसी प्रकार शम, यम, दम जिस के स्वभाव में प्रविष्ट होगए, वह स्वतंत्र है।

आठवीं टिप्पणी—प्रश्न—स्वाभाविक उद्गार वा रुचि को रोकना प्रकृति के नियम को तोड़ना है। क्या यह पाप नहीं है? जिसको तुम स्वतंत्रता कह रहे हो, यह तो उल्टी गंगा बहाना है, पाप है।

उत्तर—निस्संदेह सच्ची स्वतंत्रता गंगा के स्रोत की ओर चढ़ना ही है। ऊर्ध्वरेता होना और तुम्हारे प्राकृतिक नियम को तोड़ना ही है। यदि क़ानून की पाबंदी रही तो स्वतंत्रता कैसी?

कामनाएँ, मानसिक इच्छाएँ या उद्‌गार स्वाभाविक हैं क्या? ज़रा ध्यान तो करो, स्वाभाविक शब्द का प्रयोग यहाँ किन अर्थों में हुआ है। रेल की पटरी पर धक्का खाकर ट्राली का वायु की भाँति उड़ते जाना स्वाभाविक है, क्यों? Inertia अर्थात् जड़ता। चौगान की चोट खाकर गेंद का लुढ़कते जाना स्वाभाविक है, क्यों? Inertia अर्थात् जड़ता। ठीक इसी भाँति मांसाहारी, तृणाहारी और सामान्य पशुओं के शरीरों से विकास evolution लाभ करता हुआ पुरुष जब मनुष्य का चोला पहनता है, तो उस पर पाशविक रुचियों और उद्‌गरों के प्रभाव का आवेश होना स्वाभाविक है। पर यह क्यों? पुरानी जड़ता Inertia) पर मनुष्य की श्रेष्ठता (सर्वोत्तम होना) किस बात में है? केवल इसमें कि उसको (Inertia) जड़ता पर विजय पाने की क्षमता अर्थात् योग्यता प्राप्त है और पिछले धक्के को निष्फल करने की शक्ति है। अतः स्मरण रहे कि इस जड़ता (Inertia) की प्रकृति पर विजय पाना ही मनुष्य की मनुष्यता है। पाशविक स्वभाव पर विजय पाना मानुषी प्रकृति से बाहर जाना नहीं है, स्वाभाविक है, बल्कि मनुष्य का परमोत्तम स्वभाव है। और मानसिक कामनाओं, रुचियों तथा मन और इंद्रियों पर शक्तिमान् और स्वामी होना न तो प्रकृति के नियम को तोड़ना है और न पाप ही है। बल्कि सच्चा स्वभाव कदापि चैन नहीं लेने देगा जब तक अपने आपको सच-

मुझे स्वतंत्र न कर लोगे और प्रकृति से बेहतर न हो जाओगे।

नवीं टिप्पणी—वेताल की कथा योरप और एशिया में लगभग सब स्थानों में प्रचलित है। योगवासिष्ठ में विंध्याचल के वेताल का उल्लेख है जिसके प्रश्नों का उत्तर प्रत्येक बटोही 'यात्री' को देना होगा। ठीक ठीक उत्तर न देनेवाले के प्राण बचना असंभव है। ऐ संसार यात्रा के यात्रियो! क्या तुम उत्तर दिए बिना पल्ला छुड़ा सकते हो?—कदापि नहीं। वेताल हाथ धोकर पीछे पड़ा है। वह खाया कि खाया। उत्तर दिए बिना छुटकारा हो सकता है क्या?—कभी नहीं। वह प्रश्न दो शब्दों में यह है—"स्वतंत्रता क्या है?" प्रत्येक व्यक्ति इस प्रश्न का उत्तर देने में चक्कर में पड़ा हुआ है।

नोट—गणित-विद्या जिन लोगों ने नियमानुसार नहीं पढ़ी, वह गणित के प्रश्न वैसे ही हल करते हैं जैसे नन्हें बच्चे अपनी बुड्ढी दादी से पूछी हुई पहेलियां बूझते हैं, अर्थात् जो मुंह में आया बोल दिया। सोचना-समझना कुछ नहीं। "एक व्यक्ति ने अपने बैंकवाले रुपयों का दसवाँ भाग धर्मार्थ व्यय कर दिया, तीसरा भाग एक स्थान पर चंदा दिया रायबहादुरी की उपाधि के लोभ में), सातवां भाग बेटी के ब्याह पर नाच-रंग में व्यय कर दिया, शेष रुपयों की भूमि मोल ली। यह भूमि १७८०) की है। उसकी कुल जायदाद बताओ।"

अपरिचित लोग इस प्रश्न को इस प्रकार हल करेंगे—

कल्पना करो कि उत्तर दो हज़ार है। इससे प्रश्न की शर्तें पूरी करते हुए शेष १७८० नहीं बचे, इसे छोड़ो। अब ढाई हज़ार उत्तर कल्पना किया। इससे भी उत्तर की शर्तें नहीं

पूरी हुई। कल्पना करो कि तीन हज़ार उत्तर है। इससे भी नहीं निपटती। इसी तरह कभी कुछ कल्पना किया, कभी कुछ। भाग्य से कहीं उत्तर ठीक मिल गया, तो ख़ैर, नहीं तो अंधों की भांति लाठी से रास्ता टटोलते-टटोलते जंगल में रात कर देना कहीं गया ही नहीं।

बीज तर भूमि पर पड़ा है। ऊपर पत्थर आ गया। उगते समय नन्हा वृक्ष किस ओर झुकेगा। ठीक उसी ओर बढ़ेगा जिधर निकट से निकट मार्ग प्रकाश (स्वतंत्रता) को हो। बीज के रूप में पुरुष ने वेताल के प्रश्न (स्वतंत्रा का प्रश्न) का उत्तर व्यावहारिक रूप में ऐसे दिया है कि किसी वस्तु को एक अवस्था में थिरता नहीं है, प्रत्येक वस्तु लगातार परिवर्तनशील है। अपनी पहली अवस्था से भागती जाती है। वर्तमान रूप और नाम से स्वतंत्र हुआ चाहती है। वेताल का प्रश्न हल करने में लगी है।

बहर लहज़ा बहर साअत बहर दम।
दिगरगूं मीशवद अहवाले-आलम॥

अर्थात्—प्रत्येक क्षण, प्रत्येक घड़ी और प्रत्येक श्वांस संसार की अवस्था भिन्न भिन्न रूप होती है।

वेताल का प्रश्न इस प्रकार पीछे लगा हुआ है जिस प्रकार पक्षी के पीछे बाज़। पर हाय! एक भूल से निकलने नहीं पाते कि दूसरी भूल में गिर जाते हैं। ठीक उत्तर तो एक ही हो सकता है। ग़लत उत्तरों की कुछ सीमा नहीं। "तवे से उतरे चूल्हे में पड़े" वाला मामला हो रहा है। ठीक उत्तर नामरूप के साम्राज्य में कहीं नहीं। इसीलिये नाम और रूप की परिधि में थिरता और निवास, सुख और शांति दुर्लभ है।

सृष्टि में लड़ाई-भिड़ाई और उद्यम या पुरुषार्थ Struggle for existence के क्या अर्थ हैं ? विकासवाद में पद चढ़ने से रुकावटें दूर हों, स्वतंत्रता मिले। क्या इस ऊँड़धूप के चक्र में कहीं भी कोई 'जीवन' निमित्त उद्योग नहीं, वरन् 'स्वतंत्रता निमित्त उद्योग' से तटस्थ हो सकने की शक्ति रखता है ? साइंस ने दिखा दिया कि सूर्य का अंधकार फैलाना और गंगा का गरमी करना तो कदाचित् संभव भी हो, किंतु "स्वतंत्रता निमित्त उद्योग" में सम्मिलित न होने वाले का बचाव स्वप्न में भी संभव नहीं। आलसी पैरों तले रौंदा जायगा, निकम्मा जूतों तले कुचला जायगा, कोरा तमोगुण-वाला नहीं बच सकता।

He is not fit to survive, यह प्रकृति का नियम है। सब पापों का मूल क्या है ?—आलस्य, सुस्ती, जिसको शास्त्रों में तमोगुण कहा गया है। आलसी वेताल का उत्तर देने से स्पष्ट अस्वीकृत करता है। वेताल उसे खा जायगा।

विकास की पद्धति पर तमोगुण का प्रेमी (पुरुष) चढ़ते-चढ़ते मनुष्य के शरीर में आकर स्वतंत्रता के लिये कहाँ-कहाँ टक्करें नहीं मारता, कैसी-कैसी ठोकरें नहीं खाता ? वह जो भोग-विलास में पड़ गया या आलस्य में गड़ गया, उसका मांस और रक्त तो वेताल की क्षुधा-पिपासा के काम आया। मरा, नष्ट हुआ। ऐसों को छोड़कर उन मनुष्यों की दशा पर एक दृष्टि डालिए जो स्वतंत्रता की खोज में साहस नहीं छोड़ बैठे, उद्योग और परिश्रम को नहीं छोड़ बैठे।

यूसुफ़ जब मिस्र में बिकने लगा, तो एक बुढ़िया ने बहुत आगे बढ़कर नीलाम की बोली दी और (अपनी जायदाद) आध पाव रुई को बड़े चाव से मूल्य की भाँति उप-

स्थित किया। शाबास, बुढ़िया! शाबाश। आध पाव रुई से तो यूसुफ़ न मिला, किंतु हज़रत यूसुफ़ के खरीदारों में तो नाम पाया!

फ़ैशन के गुलामों! स्वतंत्रता के ग्राहकों में तो गिने गए। स्वतंत्रता तो भला क्या मिलनी थी। सामान्य सांसारिक मनुष्य स्वतंत्रता (अर्थात् वह अवस्था जहाँ शिर पर कोई दबाव न हो, बड़ाई, बड़प्पन' और प्रताप) के लिये उचित या अनुचित ढंग पर कोहकन (फ़रहाद) की भाँति तेशा चलाए जाते हैं। बड़ाई, बड़प्पन और शान (स्वतंत्रता) कुछ ऐसी मधुर है, कि उसकी चाह के लिये कौन है जिसका जीवन कड़ुवा नहीं हो रहा है। व्याख्यान, उपदेश और प्रचार के अवसर पर प्रायः यह शब्द सुनाई दिया करता है-"अरे भाइयो! नम्रता, नम्रता, नम्रता, निर्धनता और दीनता ग्रहण करो। दास बनो, दास बनो। बड़प्पन की भावना त्याग दो, इत्यादि।" या बंदगीगाहों (मन्दिरों वा मसजिदों) में इस प्रकार के शब्द अवश्य सुनाई देते हैं-"मैं गुलाम, मैं गुलाम, मैं गुलाम तेरा। तू दिवान, तू दिवान, तू दिवान मेरा।" हमको नौकर राखो, हमको नौकर राखो जी, इत्यादि।"

[बात में बात—कर्म-सिद्धांत के अनुसार ये दासतत्व के संस्कार फल दिए बिना कदापि नहीं रह सकते? अब परमेश्वर अपने निराकार रूप में दास कैसे रक्खे, या अपनी पत्थर या अष्टधातु की मूर्ति से कैसे नौकर रक्खे। किंतु यह दासपन के संस्कार भी फल दिए बिना कदापि नहीं रह सकते। अतः प्रकाश स्वरूप, ज्योतिर्मय परमेश्वर श्वेत चमकीले गोरे चिट्टे शरीर धारण करके इंडिया को गुलाम बना रहा है।]

किंतु जुड़े हुए हाथों, झुकी हुई गर्दन और निकले हुए दांतों की तह के नीचे घर-घर में, दुकान-दुकान में, हर दफ्तर में, हर चौक बाज़ार में, भोजन करते समय, सोते समय, चलते-फिरते समय यह स्वाभाविक वाणी प्रत्येक के अंतःकरण से लगातार आती रहती है—। "गुरुता, गुरुता, गुरुता, हाय महत्ता! हाय बड़ाई, स्वतंत्रते!" इस भीतरी शब्द को दबाने या रोकने के असंख्य प्रयत्न किए गए, किंतु इसका बल द्विगुण ही होता गया। गठिया के पुराने रोग की भाँति एक स्थान से नाम को हटाया भी गया तो दूसरे स्थान पर झट फूट आया। क्या सच कहा है:—

Truth crushed to earth shall rise again, the eternal years of God are hers.

भावार्थः—सचाई यदि दबाई जाय तो पुनः फूट कर निकल आती है क्योंकि ईश्वर का नित्य का समय उसी के लिये होता है।

वही बंदे प्रार्थी जो इबादतघरों (मन्दिरों) में सर रगड़ रगड़ कर यह कहते हुए सुनाई देते थे, "मैं दास, मैं दीन, पापी पातकी, सच का सेवक आदि" यही परमेश्वर के साथ बना बना कर चिकनी चुपड़ी छल छिद्र की बातें करने वाले जब ज़रा सुन पाते हैं कि अमुक व्यक्ति ने हमें कह दिया है "पापी, अधम" तो झट आग-बबूला हो जाते हैं। आश्चर्य है, वह व्यक्ति जो प्रति दिन परमेश्वर के पवित्र उपासनालय में पुकार कर प्रतिज्ञा कर आया है-"मैं दीन, अधम, पापी" वह अब बाज़ार में आकर अपने ही वचन से चिढ़ता क्यों है? हाय! परमेश्वर के मंदिर में झूठ बोल आया। गंगाजली उठाकर ही नहीं, गंगाजी में स्नान करते समय "पापी हूं, पाप कर्मोंवाला हूं, पापात्मा हूं, इत्यादि" कहते हुए नासिका

कता की आँधी बहा आया। क्या ऐसा गंदा झूठ दंड दिए बिना रह जायगा। यादवों ने एक ब्राह्मण के सामने झूठ बोला था, सत्य को छिपाया था, और का और करके दिखाया था, पुरुष को गर्भिणी स्त्री बनाया था, परिणाम क्या हुआ? पीछे यादवों ने बहुत कुछ प्रयत्न किए कि दंड से छुटकारा मिल जाय, लेकिन किस प्रकार? उस *लच्च (वर्तन-बाटी) को रेत में रगड़ते रगड़ते मटियामेल करना चाहा, उसको सर्वथा नष्ट करने का पूरा पूरा यत्न किया गया। परन्तु 'सत्यमेव जयते नानृतम्'। Truth crushed to earth shall rise again, the eternal years of God are hers. वही रगड़ा हुआ बीज फिर उगा। उसी बीज ने यादवों को नष्ट कर दिया। नाम मिटा दिया। द्वारका पर पानी फिर गया। उसी बीज ने बाण की गाँसी बनकर स्वयं कृष्ण के पाद-पद्म से आँख लड़ाई और ऐसा पाँव पर पड़ा कि कृष्ण कहां रहा। इस स्वाभाविक स्वतंत्रता की ध्वनि को, जो निरन्तर सत् की ओर से आ रही है, हज़ारों व्याख्यान, लाखों पुस्तकें, करोड़ों सिजदागाहें, (उपासनास्थान) दीनता और नम्रता के रोने से नहीं दबा सकतीं। यह बला की गुत्थी उपस्थित करना बेताल कभी नहीं भूलेगा। दीनता दीनता का नाम लेकर उत्तर देने से अस्वीकृति करने वाला अनुत्साह के गढ़े में गिरेगा, और असत्य उत्तर भी रोने और दांत पीसने का कारण होगा।

---

*यह कहानी प्रचलित है कि यादवों ने एक पुरुष के पेट पर बाटी (वर्तन) बांध कर उसे स्त्री का रूप धारण कराकर दुर्वासा ऋषि से पूछा कि महाराज यह स्त्री क्या जनेगी? उसके उत्तर में यह शाप मिला कि मुझे भी धोका देना चाहते हो? यह वह जनेगी जिससे तुम सबका नाश हो जायगा।

असत्य उत्तर—जो लोग अहंकार (देहाध्यास) को लेकर बाहरी दबाव से स्वतंत्र अर्थात् बड़ा बनना चाहते हैं, वह प्रकृति या निज स्वभाव की भीतरी ध्वनि का असत्य उत्तर देते हैं।

बड़ाई के सामान्य अर्थ क्या हैं? "प्रधान होना अपनी जाति में, अद्वितीय हो निकलना। ऐसा उच्च पद पाना कि अपने समान गुणवानों की संख्या कम होजाय, समान गुण और समान व्यवहार वालों की संख्या जितनी ही कम होगी, संसार में उतनी ही श्रेष्ठता और महत्ता अधिक गिनी जायगी। अतः संसारी लोगों के यहां बड़ाई वह है जो समान गुण वालों की श्रेणी या सीमा से बाहर निकाले, अद्वितीय बनाए। चिंताओं के बोझ से छुटकारा दे। अन्यों के खटके से निवृत्ति दे। दूसरों के भय से छुटकारा दे। नानात्व का बोझ उतार दे।"

अब वह महाशय जो इधर तो शरीर के अहंकार little self से परिच्छिन्न हो रहे हैं और उधर स्वतंत्र और बड़ा बनना चाहते हैं, सदैव असफल रहेंगे, पछताएँगे।

"मैं उत्तम वंश का हूँ"—इस बात पर मुग्ध पुरुष थोड़े दिनों में भाईबंदों को अपने ऐसा देखकर विचलित होता है। क्योंकि वह देखता है कि मैं अद्वितीय नहीं, समानगुण लोग बहु संख्यक मौजूद हैं। बेताल का प्रश्न (हाय स्वतंत्रते) फिर तीर की भांति चुभता है। ब्रह्मविद्या जिसके व्यवहार (बर्ताव) में नहीं है, इस प्रकार का एक बड़ा भारी पंडित किसी और विद्वान पंडित का नाम सुनकर यदि खुल्लम खुल्ला निंदा करना न आरंभ करेगा, तो मन में अवश्य वैसे ही घटने लग जायगा जैसे आरंभिक श्रेणी का बालक अपने

से चतुर बालक को देख दुःख मानता है। "मैं ताज़ा एम० ए० हूँ," इस घमंड में चूर का जब एक आध महीने में नशा उतरता है, तो देखता है कि मेरे जैसे, बल्कि मुझसे अच्छे सैकड़ों पड़े हैं, मैं श्रेष्ठ नहीं, अद्वितीय नहीं। बेताल का प्रश्न फिर आग की भांति जलाता है।

आज युनिवर्सिटी कनवोकेशन का जलसा है। चांसलर साहब सभा में शोभायमान हैं। फ़ेलो (सहपाठी या समपद) लोग कुर्सियों पर विराजमान हैं। दर्शक-गण चारों ओर से नए ग्रेजुएटों की ओर उँगलियाँ उठा रहे हैं। नया स्नातक मन में बड़ा प्रसन्न हो रहा है कि चौदह पंद्रह वर्ष के परिश्रम का आज फल मिलेगा। प्रसन्नता से कपोल फूल रहे हैं। (Gown) गौन अर्थात् शाटक फड़काता सर्टिफ़िकेट के लिये उठा है। चांसलर साहब के सामने सम्मान पूर्वक खड़ा है। इस समय चित्त-वृत्ति कैसी एकाग्र है। ए आशारूपी वाटिका के नव-युवक! वाइस-चांसलर साहब की वक्तृता सुनने से पहले राम की रामकहानी से चित्त और कान मत मोड़। प्यारे! इधर तो कंठ से लेकर पग पर्यंत घोर काला जामा (जो पूरी आयु में एक दिन भी तो काम में नहीं आता) पहनकर लोटपोट हो रहा है; उधर बेताल तमाशा देखदेख कर हँस रहा है कि "सोलह वर्ष बिता दिए किंतु मेरे प्रश्न का उत्तर ठीक न दे सका।" यह नतमस्तक होना, सर्टिफ़िकेट के लिये हाथ का बढ़ाना और सम्मान पूर्वक प्रणाम सब बोल रहे हैं कि नवयुवक उपाधि प्राप्त कर रहा है, प्रमाणपत्र ले रहा है, मान पा रहा है, आनंद यह है कि एक ही बात उधर नवयुवक में अभिमान भर रही है, उधर डिग्री प्रदान करनेवालों (फ़ेलो युनिवर्सिटी से उसके कमतर

और छोटा होने को स्पष्ट जतला रहा है। उस समय ग्रेजुएट के ख्याल में जो उन्नति का पद वा स्थान है, वही उसके न्यून और छोटा होने पर है। डिगरी लेना न तो केवल थीसियों समान गुण विद्यार्थी (फेलो ग्रेजुएट) साथ दिखा रहा है, वरन् सैकड़ों बहुत बड़े बड़े (फेलो महाशयों) के भी एक साथ दर्शन करा रहा है। अतः बी० ए० की 'बड़ाई (अर्थात् अद्वितीय होना) के भला क्या अर्थ हो सकते हैं? ठीक इसी प्रकार संसारी पुरुष जिस बात में कभी सम्मान समझता है और अभिमान करता है दूसरी दृष्टि से वह बात सदैव उसकी शान की कसर (कमी) जतलाती है। संसार का जीव रहकर अद्वितीय [श्रेष्ठ और स्वतंत्र] होना किसी प्रकार से संभव नहीं, पर क्या यह स्वाभाविक इच्छा (स्वतंत्रता, श्रेष्ठता) मनुष्य के भीतर हँसी-ठठोली के लिये है, केवल मखौलबाज़ी है और पूरी होने के लिये नहीं है? ऐसा क्यों होगा। यह स्वाभाविक धुन [स्वतंत्र और श्रेष्ठ होने की) यह लगन जो रात-दिन पीछे लगी रहती है, पूरी क्यों न होगी? अवश्य पूरी होगी। किंतु परिच्छिन्न जीव होने की हैसियत से मनुष्य के भीतर की यह अग्नि कदापि कदापि नहीं बुझ सकती।

"मैं सेठ हूँ" इस विचार का घमंड रखनेवाला शीघ्र ही देखता है कि मुझ से अधिक धनाढ्य लोग मौजूद हैं। हाय मैं उन-जैसा कब हूँगा। मैं अद्वितीय नहीं, बड़ा नहीं। फिर बेताल का प्रश्न आकर व्याकुल करता है। बढ़ते-बढ़ते कल्पना करो कि संसार में इँगलैंड का राज्य मिल गया, फिर रूस और फ्रांस आदि समान शक्तिवाले हृदय में खटकते रहेंगे, चोरों का भय लगा रहेगा आदि। प्रजा की दृष्टि में बड़े बन गए,

अधीन राजाओं के संपूज्य होगए, किंतु ज्ञान के विना दृष्टि तृप्त न होगी और न होगी। निःसन्देह श्रेष्ठता और स्वतंत्रता कोसों दूर रहेगी। सहस्रों महाराजाधिराज इस संसार में हो बीते हैं, क्या सब के सब आनंदित थे ?—नहीं; जितनी जितनी जिसमें ज्ञान की झलक थी, उतना उतना वह आनंदित था।

तात्पर्य यह कि जाति, वर्ण और मत [caste colour and creed] की बड़ाई वास्तव में छोटाई है! "मैं उच्च जाति का हूँ, इस लिये बड़ा हूँ" राम कहता है "प्यारे, यदि तुम जाति के कारण सर्वश्रेष्ठ और अद्वितीय बनना चाहते हो तो तुम सब से नीच हो। क्योंकि उस जाति के तुम-जैसे सहस्रों मनुष्य और विद्यमान हैं। किसी विशेष जातिवाला होना तो तुम्हारे श्रेष्ठ (अद्वितीय वा स्वतंत्र) होने में बाधक है।" यह अनुचित अहंकार मीठी गाजरों की भांति तुम्हें एक दिन उदर पीड़ा उत्पन्न करेगा। बड़े बड़े नगरों में जब दसहरे का मेला होता है, तो लीला वाले मैदान के चारों ओर प्रायः लोहे का कांटेदार तार लगा देते हैं जिससे विना टिकट के लोग मैदान के भीतर न आने पावें। उस समय तार के चक्र के बाहर हिंदुओं का बड़ा भारी जमाव होता है, देह से देह छिलती है, दर्शक लोग तार के किनारे किनारे चक्कर लगाते चले जाते हैं, पीछे से धक्के पर धक्के मिलते हैं। आगे भीड़ के कारण पैर टिकाने की जगह नहीं मिलती। इस प्रकार पिस-पिसाव में जकड़े हुए चक्र में घूमनेवाला यदि (क) स्थान से (ख) तक चला जावे, तो निस्संदेह संसार की दृष्टि से बहुत उन्नति करता है, किंतु प्राणों से उसकी जान वा चित्त से पूछो कि आया स्थान (क) की अपेक्षा स्थान

(अ) पर धक्कम धक्का से कुछ कम कुचला जा रहा है कि वैसा ही। प्यारे चाहे (क) पर पहुँच जाओ, चाहे ग पर, चाहे
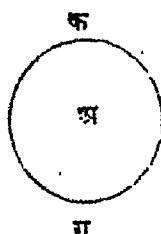
फिर (क) पर आजाओ, जब तक चक्र में रहोगे, आगे पीछे के दबाव से स्वतंत्रता अ नितांत असंभव है। हाँ टिकट खरीदने पर० मैदान के भीतर (अ) केंद्र को जा सकते हो। वहाँ कोई धक्कम धक्का नहीं है। संसार में

स्थान (ग) वाले (अर्थात् सर्वोच्च प्रतापशाली पुरुष) का चित्त वैसा ही डाँवा डोल, चञ्चल और धक्के खानेवाला होता है, जैसे स्थान (ग) अर्थात् अत्यन्त अधम श्रेणी) वाले का। ऐ पीड़ा और दुःख में रोने वाले संसारी! यदि तुम अपने से संसारी पदों में बड़े लोगों को देखकर डाह और ईर्षा कर रहे हो, तो मुँह मोड़ो, मुँह मोड़ो इससे, भूल जाओ, इस विचार को क्योंकि वह लोग जो देखने में तुम से अधिक प्रतापशाली हैं, अपने बाहरी मान और वैभव के कारण तुम से तनिक भर भी अधिक सुखी और प्रसन्न नहीं हैं। हाँ यदि उनमें ज्ञान का विकास अधिक है तो वह अधिक आनंदित होंगे। और यदि आपके भीतर ज्ञान अधिक व्यवहार में आया हुआ है, तो आप अधिक प्रसन्न होंगे। संसार की संपत्ति और वैभव आनंद की प्राप्ति में कोई नियोगी (factor) नहीं है। वह लोग जो अपने आप को शरीर या शरीरी मानकर अपने को श्रेष्ठ और महान बनाया चाहते हैं और अपने निकट स्थावर जंगम अधिकृतियों (मनकूला या गैर मनकूला मकबूजात) के ढेर लगाकर बड़े बनने की आशा रखते हैं, वे आरंभ ही में भूल कर आप हैं।

केवल शून्य (०) को चाहे कहाँ तक गुणन दो। वह शून्य का शून्य ही रहेगा। इसी प्रकार यह गुत्थी हल नहीं होने की; व्यर्थ समय खोना है। आध पाव रूई या रेशम से यूसुफ़ नहीं मिलेगा। शांति नहीं प्राप्त होगी। देहाध्यास में फँसे हुए 'शद्दाद' ने चाहा कि नईम (स्वर्ग-वाटिका) बनाकर ईश्वर की भाँति (जो मुझसे अलग है) आनन्द मनाऊँगा। अलीप की कहानी के कुत्तेवाली कहावत उसपर ठीक उतरी, जो मुँह में मांस का टुकड़ा लिए नदी में से जा रहा था, अपनी छाया को अपने से अलग मान उस छाया के मुँह वाले मांस को छीनने के लिये पानी में झपटा और इसी झगड़े के कारण नदी में वह गया।

फुटबाल का गेंद यदि नियत झंडियों (गोल) से परे की भूमि में भी चला जाय, लेकिन झंडियों के बीच से न निकल जाय तो व्यर्थ है। गेंद को झंडियों के भीतरी ओर वापस लाना होगा और फिर नियमानुसार झंडियों के बीच में से निकालना होगा, अन्यथा कुछ न बनेगा। ऐ शद्दाद की भाँति अहंकार (little self) को बड़ा बनानेवालो! तुम अनुचित रीति से झंडियों के उसपार की भूमि पर जा रहे हो। लौटो, पीछे हटो, वापस पीछे को मुँह मोड़ो। सच्चे अपने आपको (आत्मा) साक्षात्कार करो और तुम वही ईश्वर हो जिसकी नक़ल उड़ाने का प्रयत्न शद्दाद ने किया था।

धन में, भूमि में, संतति में, मान में और संसार की सैकड़ों वस्तुओं में प्रतिष्ठा ढूँढनेवालो! तुम्हारे सैकड़ों उत्तर सब के सब अशुद्ध हैं। एक ही ठीक उत्तर तब मिलेगा जब अहंकार को छोड़ देह और देहाध्यास के भाव को ध्वंस कर और द्वैत (भिन्न दृष्टि) को त्याग कर सच्चे तेज और प्रताप

को सँभालोगे। इस प्रकार और केवल इस प्रकार अन्य का नाम नहीं रहने पाता, द्वैत या नानात्व का चिह्न नहीं बाक़ी रहता। परम स्वतंत्र, परम स्वतंत्र, एकमेवाद्वितीयम्, एकमेवाद्वितीयम्।

क्लेश और दुःख क्या है? पदार्थों को परिछिन्न दृष्टि से देखना, अहंकार की दृष्टि से पदार्थों का अवलोकन करना। केवल इतनी ही विपत्ति संसार में है; और कोई नहीं। संसारी लोगों, विश्वास करो, दुःख और क्लेश केवल तुम्हारा ही बनाया हुआ है; अन्यथा संसार में वस्तुतः कोई विपत्ति नहीं है।

Look and laugh glass or ludicrous glass हंसाने वाले या टेढ़े शीशे में से जब बच्चे सुंदर से सुंदर मनुष्य को देखते हैं, तो कैसा भयानक और डरावना रूप दिखाई देता है। ठीक इसी भांति यद्यपि "ईश्वर सृष्टि" में कोई भी बात बुरी भयानक और निकम्मी नहीं है, "भ्रांति और अविद्या का धुंधला शीशा" आंखों पर लगाने वाले भयानक "जीव-सृष्टि" से बालकों की भांति हताश और भयभीत पड़े होते हैं।

साज़ सारंगी बजाने वाले की उंगली कभी भूल नहीं करती। प्रथम श्रेणी का प्रवीण है। अद्भुत की सुस्वरता (harmony) उन अँगुलियों से निकल रही है। यदि तुमको विरोधस्वर (discord) सुनाई दे रहा है, तो केवल यही कारण है कि तुम्हारी सारंगी के तार ढीले होंगे। सारंगी के कान (खूँटी) मरोड़ो, तारें कस लो, मधुर स्वर तो पहले ही से हो रहा है। तुम्हारा कभी कुछ बिगाड़ हो ही नहीं सकता। दुःख दर्द क्यों?—

गुलशने-गेती नदारद गैर-गुल।
वहमे खुद बगुजार खारईं अस्तो बस॥
न कुछ पीरी बादे-सबा की।
बिगड़ने में भी जुल्फ उसकी नवाकी॥

संसार के बागीचे में पुष्प से इतर कुछ नहीं। अपना भ्रम छोड़, यही एक कांटा है।

एक नवयुवक पर देवता पुष्प-वर्षा कर रहे थे, इंद्र उसे वरदान दे रहा था, अकस्मात् ऐसी धुंधली छा गई कि नवयुवक की दृष्टि से देवता ओझल हो गए। क्या देखता है कि एक मनुष्य दायें से उसके चुटकी ले रहा है, एक बाएँ से उसकी बाहें मरोड़ रहा है, एक सामने से लाल नेत्र दिखा रहा है, एक पीछे से ढकेल रहा है, जब यह स्वप्न-सा दूर हुआ तो वाछें खिल गईं, न कोई धुंध था न अहंकार, न कोई दायें बाएँ से छेड़खानी ही थी, वही फूल बरस रहे थे और इंद्र के सामने प्रतर्दन की भांति अपने आप को वर प्राप्त करते हुए मौजूद पाया। ऐ चिंता और शोक में निमग्न पुरुषों ईश्वर-दृष्टि में तो आप पर फूल ही बरस रहे हैं, इंद्र वर ही दे रहा है, किंतु अपने भ्रमों के बादलों में आप नाना विपत्तियाँ भोग रहे हो। अपनी चिंताओं और शोक के स्वप्न में कुछ का कुछ पड़े रचते हो। इस जीव-सृष्टि का परित्याग करते ही देखोगे कि समय कभी तुम्हारे प्रतिकूल नहीं हुआ। दैव कदापि रुष्ट और दुःख देने वाला नहीं। काल चक्र तुम्हें सच्ची स्वतंत्रता दिलाने पर तत्पर है। यथार्थ आत्मज्ञान से ये चिंताओं और भ्रमों की जीव-सृष्टि का स्वप्न दूर होता है। अँगरेज़ी राज्य की बदौलत जाति का चमार जब मुक़ाबले परीक्षा उत्तीर्ण करके तहसीलदार हो जाता है, तो वह अपने चमारपन का नाम भी नहीं लेता, चमड़े के काम को

याद भी नहीं करता। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान की बदौलत सच्ची ईश्वरता पालेही चमड़े गांठने की चिंता और शोक व्यर्थ है, संशय, चिंता या अनात्मचिंतन की सृष्टि एक दम विलीन हो जाती है।

ऐ मुक्त पुरुषों के देश वालो! ऐ महर्षि-कुमारो! जब देखते हो कि वह तहसीलदार जो तुम्हारे विचार में पीढ़ियों से चमार चला आता है, चमड़ा गांठने (शूद्रपन) के काम को स्वप्न में भी नहीं करता, तो तुम तो अनादि काल से शंकर स्वरूप चले आते हो, सदा ईश्वर हो।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो।
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

तुमको क्या आवश्यकता पड़ी है वाहियात जीव-सृष्टि बनाने की। अनात्म-चिंतन, चमड़े की चिंता और शोक खेद और सन्ताप छोड़ो, जीव-सृष्टि क्यों बनाते हो जबकि ईश्वर सृष्टि तुम्हारी ही है। केवल ज्ञान के प्रकाश की देर है, खेद, चिंता, दुःख, संताप, पीड़ा और व्याधि पास नहीं फटक सकेंगे। चैलेंज भेजता है राम, शोक, भय, लोभ, मोह, काम आदि को कभी मुँह तो दिखा जायँ।

आजादा अम् आजादा अम् अज रंज दूर उफ्तादा अम्।
अज हुसनये जाले वहां आजादा अम् वाला सिवम्॥
जाले-जहाँ दैना सखुन इशवए-नाजकी मकुन्।
दिल तवो नेस्त मुबतिला तन तलिमला तला तला॥

भावार्थः—मैं स्वतंत्र हूं, मैं स्वतंत्र हूं, शोक से नितान्त दूर हूं। संसार रूपी बुढ़िया के नखरे से, प्रभाव से मैं नितान्त मुक्त और परे हूं। ऐ संसार रूपी बुढ़िया, यह सुन, नखरे टखरे मत कर, तेरे से मेरा चित्त आसक्त नहीं. तन तन तना, तना,।

किन्तु वैलक्ष्ज वैलक्ष्ज कैसा ? साझीदार [भागीदार] है ही नहीं, अन्य हुआ ही नहीं, वैलक्ष्ज ?

अगर ग़म लश्कर अंगेजद कि खूने आरिफां रेजद।
शुआए-जात अंदाजेम व बुन्यादश वरन्दाजेम॥

अभिप्रायः—यदि चिन्ता अपनी सेना को आत्मवेत्ताओं की रुद्र-नदी बहाने को भड़कादे तो भी हमारे भीतर ज्ञानाग्नि की ज्वाला उस [चिन्ता] की जड़ को उखेड़ [भस्म] कर डालेगी।

स्वप्नान्तं चो जागरितान्तंचो भौयेवानु पश्यति।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥ ४॥
य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीव मन्तिकात्।
ईशानं भूतभव्यस्थ न ततो विजुगुप्सते॥ ५॥
(कठ, अ, १, व, ४, ४, ५)

भावार्थः—जिस के प्रकाश में स्वप्न और जागरित दोनों अवस्थायें दिखाई देती हैं उस अपने वास्तविक स्वरूप को, जो सर्वव्यापक और महान् है, जानते ही आत्मवेत्ता के शोक चिन्ता सब उड़ जाते हैं।

स्वयं जो इस मधु (निजरस) के भोक्ता, समीप से समीपवर्ती, और भूत भविष्य के स्वामी आत्मा को जानता है, वह ज्ञानी फिर कभी नहीं कुढ़ता। (अर्थात् न किसी आश्रय वा आधार की जिज्ञासा करता है और न किसी की अप्राप्ति पर व्याकुल होता है)। निःसन्देह यह वही है।

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेवपश्यति॥ १०॥
(कठ, अ० १, व, ४, १०)

"जो यहाँ है, निःसन्देह यही वहाँ है, और जो वहाँ है,

वही यहाँ है" इस स्थान पर विपरीत देखनेवाला मृत्यु से मृत्यु में जाता है।

एक हाथ में स्वादिष्ट मिठाई और दूसरे में अशर्फ़ी बच्चे को दिखाकर कहा जाय कि इन दोनों में से कौन सी एक वस्तु तुम्हें स्वीकार है, तो नादान बच्चा मिठाई को पसंद करेगा जो उसी क्षण स्वाद दे जाती है। यह नहीं जानता कि अशरफ़ी से कितनी मिठाई मिल सकती है। यही दशा उन संसारी लोगों की है जो श्रेष्ठ बनानेवाली सच्ची स्वतंत्रता की अशरफ़ी को छोड़कर जुगनू की चमकवाली क्षणभंगुर स्वाद देनेवाली मिठाई अंगीकार कर रहे हैं। ग्वालपन छोड़ कर अपने जन्मजात स्वत्व (राजगद्दी) को सँभालने के लिये कृष्ण भगवान् का कंस को मारना अत्यावश्य कर्त्तव्य था किंतु कंस तब मरेगा जब कुब्जा सीधी होगी। पान सुपारी चन्दन इत्र अबीर आदि लिए कंस की सेवा को कुब्जा जा रही है, इतने में महाराज से भेंट हो गई। पैरों के साथ कुब्जा की बोलचाल भी अत्यंत टेढ़ी थी। एक मुक्का मारने से कुबरी की पीठ सीधी होगई। नाम तो कुब्जा ही रहा, किंतु सीधी होकर अपने उपकारी के चरणों पर गिरी। अब कंस से संबंध कैसा? पान सुपारी चंदन इत्र अबीर से भगवान् का पूजन किया और उन्हींकी हो रही। सीधी कुब्जा को सहृदय सखी बनाते ही कृष्ण भगवान् की कंस पर विजय है और स्वराज्य (पैत्रिक अधिकार) प्राप्त है। विषयों के वन को त्यागकर सच्चे साम्राज्य को सँभालने के लिये अहंकार (अहंता) रूपी कंस को मारना परम आवश्यक है, नहीं तो अहंकार रूपी कंस की ओर से होनेवाली भाँति भाँति की पीड़ाएं और चित्र-विचित्र अत्याचार कहीं

चैन से दम न लेने देंगे। अहंकार (कंस) तब मरेगा जब कुब्जा सीधी होकर कृष्ण (आत्मा) की भेदी [आत्मा के रहस्य को जानने वाली] हो जायगी।

कुब्जा क्या है?—श्रद्धा, विश्वास। सर्व साधारण के यहाँ उल्टी [कुबरी] श्रद्धा अहंकार की सेवा में दिन रात लगी रहती है। "घर मेरा है" इस रूप में अथवा "धनसंपत्ति मेरी है" इस रूप में, "स्त्री-पुत्र मेरे हैं" इस रूप में, "शरीर और बुद्धि मेरे हैं" इस रंग में। इस प्रकार के वेशों में अनर्थ करनेवाली श्रद्धा कुब्जा [उलटा विश्वास] प्रति समय अहंकार [देहाध्यास वा अहंता] को पुष्टि और बल देती रहती है। जब तक यह संसारासक्त दृष्टिवाली श्रद्धा सीधी होकर आत्मा [कृष्ण] की सहगामिनी, और तद्रूप न होगी, न तो अहंकार [कंस] मरेगा और न स्वराज्य मिलेगा। मारो ज़ोर की लात इस कुब्जा को, जमाओ विवेकरूपी मुक्का इस उल्टे विश्वास को। अलिफ़ [।] की भाँति सीधी कर दो इस कुबरी श्रद्धा की कमर।

कद्दे-अलिफ पैदा कुनम् चूँ रास्त पुश्ते-नूँ कुनम्

अर्थात्:—जब नून अक्षर की पीठ को सीधा करता हूं तो अलिफ़ के कद को मैं सीधा कर देता हूं।

अपने असली स्वरूप परमात्मा में पूर्ण विश्वास उत्पन्न करो, देह और देहाध्यास कैसे। तुम तो मुख्य ईश्वर हो।

गुफ्तम् शहा चंदी गना दारी व मन दर फाका अम्।
गुफ्ता बिया, बिगुज़र ज़े खुद ता मन तुरा कारूं कुनम्॥

तुम तो राम हो तुम बिना कुछ और है ही नहीं। मेरा तेरा आदि संबंध के क्या अर्थ? शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम् शिवोऽहम्। इस प्रकार सीधी पीठवाली कुब्जा (यथार्थ

श्रद्धा) को एकश्वास और एकप्राण बनाते ही कंस वंस कहाँ रह जायँगे। स्वराज्य के तत्काल प्राप्त होने में क्या संशय है? यह श्रद्धा जब तक अहंकार (कंस) की सेवा में है, तब तक पीठ से टेढ़ी अर्थात् भ्रांति और भ्रम है, ज्योंही आत्मा अर्थात् कृष्ण की सेवा में आई, यूंही अलिफ़ की तरह सीधी है, उत्तमताओं का भंडार है; अद्भुत सुंदरी है, उसको सदैव अपने साथ रखने वाला (आत्म-अभ्यासी) स्वतंत्र है, और केवल वही स्वतंत्र है अन्य कोई नहीं, अन्य कोई नहीं। इस पवित्र श्रद्धा निश्चयात्मा) के मित्र होते ही इंद्रियों के हाव भाव कटाक्ष बंद हो जाते हैं। विषय विकार दूर रह जाते हैं, इच्छाओं से पृथक्ता।

> चे नादाँ बूद आँ मजनूँ कि आशिक गश्त बर लैली।
> चो लैली रफ्त अज दस्तश परेशाँ माँद दर लैली॥
> अजब मन शम्स तबरेजम् कि आशिक गश्ता अम् बरखुद।
> चो खुद दर खुद नजर कर्दम नदीदम् जुज खुदा दर खुद॥

भावार्थः—वह मजनू कैसा मूर्ख निकला जो लैली पर आशक (आसक्त) होगया और जब लैली हाथ से निकल गई तो अति व्याकुल हुआ घूमता फिरता रहा। मैं तो विचित्र प्रकार का शम्स तब्रेज़ हूं जो अपने पर (निजात्मा पर) आप आशक (आसक्त) हूं और जब भीतर दृष्टि करके देखता हूं तो अपने में परमात्मा से इतर और कुछ नहीं देखता हूं।

सीधी कुब्जा का जादू मंत्र केवल सत्यता है, और यह मंत्र (ॐ) ऐसा प्रभावशाली होता है कि ग्वालपन (देह-अध्यास और अहंता के संसर्ग और संबंध एक दम तोड़ देता है। गोपियां (इच्छाएं) मानो कभी थीं ही नहीं, वन कानन से कभी प्रयोजन ही न था। सदा से राज्य ही करते चले आए हैं। महाराज! ग्वालपन एक स्वप्नसा था, बीत

गया। कानन भ्रमण एक लीला सी थी, बंद हुई। विषय भोग उलहना ही देते रह जायँगे।

वे वफाई क्या कहूँ मैं श्याम [1]गुलरू की।
हमसे खामोशी करें कुब्जा से बातें प्यार की॥

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्व पवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि। द्रविणं ॐ सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः।
(तैत्तिरीय व १, अ १०,)

अर्थ—संसाररूपी वृक्ष का हिलाने वाला मैं हूँ। मेरी प्रसिद्धि गिरि-शृंग की भांति ऊँचा, मेरी मूल (मेरा स्वरूप) शुद्ध पवित्र है, मेरा ही अमृत (जलाल, प्रकाश) सूर्य के तेज में है, मैं प्रभापूर्ण संपत्ति हूँ, पूर्ण ज्ञान, अमर और अविनाशी मैं हूँ।

आपत्ति—ऐसे ही विचार का नाम आत्मचिंतन और ब्रह्म अभ्यास है तो उसे अहंकार आत्मप्रशंसा और स्वार्थ कहना शोभित और उचित होगा। वह आचार्य भी अच्छे थे जिन्होंने इस मंत्र को ब्रह्मयज्ञ की प्रतिष्ठा दी।

उत्तर—यह आपत्ति केवल वेही बुधिमान करेंगे जो अपने आपको भी नहीं जानते। वेदांत की आत्म प्रशंसा, संसार की स्वार्थपरता और अहंता से उतनी ही विपरीत है जितना कि वेदांत के अनुसार स्वयं आत्मा शरीर और बुद्धि आदि से परे है। मेरा सच्चा अपना आप वह नहीं है जो तुम्हारे अपने आप से जुदा है वरन मेरा सच्चा अपना आप वह है जो उससे जुदा है जिसको सर्व-साधारण "मेरा अपना आप" कहते हैं, जिसको ऊपर वेताल की उपाधि प्रदान की गई है। यह एक ईश्वरीय नियम है। यह ईश्वरीय

---

[1] श्यामसुन्दर

नियम सब नियमों की अधीनता (बन्धनों) से स्वतंत्रता का मार्ग दिखाता है। यह अटल ईश्वरीय नियम छाया की भाँति सदैव साथ रहता है और जैसे बच्चे अपनी ही छाया से भय खाते और भागते हैं, उसी तरह ब्रह्मविद्या से वंचित लोग इस वेताल की बदौलत भाँति भाँति की दौड़ धूप और आवारागर्दी करते अर्थात् भटकते फिरते हैं। ज्ञानवान् महात्मा जानता है कि यह ईश्वरीय नियम मेरे ही स्वरूप की स्वतंत्रता जतलाता है।

परम स्वतंत्र की दशा।

रागनी बढंस—ताल धमार।

आज़ादा अम, आज़ादा अम, अज़ रंज दूर उफ्तादा अम।
अज़ इशवए-ज़ाले-जहाँ, आज़ादा अम बालास्तम ॥ १ ॥
तन्हास्तम, तन्हास्तम, बे बुल अजब तन्हास्तम।
जुज़ मन न बाशद हेच शै, यकतास्तम, तन्हास्तम ॥ २ ॥
चूँ कारे-मर्दम मे कुनन्द, अज़ दस्तो-पा हरकत कुनंद।
बेकार माँदम जाए-हरकत, हम मनम, हर जास्तम ॥ ३ ॥
अज़ खुद चहा बेरूँ जहम, गो मन कुजा हरकत कुनम?
अज़ बहरचे कारे कुनम, मन रूहे-मतलबहास्तम ॥ ४ ॥
बे मुफ़लिसम, बे मुफ़लिसम, बाखुद न मेदारम जवे।
अंजम जवाहिर महर ज़र, जुमला मनम, यकतास्तम ॥ ५ ॥
नमरूद शुद मरदूद चूँ? बूदश निगह महदूद चूँ।
मारा तकब्बुर के सज़द, चूँ किब्रिया हरजास्तम ॥ ६ ॥
तालिब मकुन तौहीने-मन, दर खाना-अत राम अस्त बीं।
रू ताफ़ती अज़ मन चुरा? दर क़ल्बे तौ पैदास्तम ॥ ७ ॥

अर्थ—मुक्त हूं, मैं मुक्त हूं, शोक चिन्ता से मैं मुक्त हूं। संसार रूपी बूढ़िया के नखरे टखरों से मैं मुक्त और निर्लिप्त हूं ॥१॥ मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, और कैसा विचित्र रूप से अकेला हूं। कि मेरे बिना कोई वस्तु नहीं, मैं एकमेवाद्वितीयम् हूं ॥२॥ जब लोग कार्य करते हैं और हाथ पाँव से चेष्टा करते हैं, तो मैं बेकार रहता हूं क्योंकि सब कर्म का अधिष्ठान मैं सर्वत्र हूं ॥३॥ अपने से बाहिर मैं कैसे आऊं? और फिर कहाँ मैं जाऊं? जो कुछ भी काम मैं करता हूं, मैं ही उसका तात्पर्य व प्रयोजन होता हूं ॥४॥ मैं कैसा निर्धन हूं, मैं कैसा निर्धन हूं कि अपने साथ एक जौ भर नहीं रखता हूं। तारे, मोती, हीरे, सूर्य और सोना यह सब मैं हूं और अद्वैत हूं ॥५॥ नम्रूद मरदूद क्यों हुआ? इसलिये कि उस की दृष्टि परिच्छिन्न थी। पर मेरी तो परिच्छिन्न दृष्टि नहीं और मुझे यह परिच्छिन्न दृष्टि कैसे शोभा देती है जब कि मैं स्वयं महान और सर्वत्र हूं ॥६॥ ऐ जिज्ञासु! मेरा अपमान मत कर, तेरे (अन्तः करण) भीतर राम भगवान् है, वहाँ मुझे देख। मेरे से मुख क्यों मोड़ता है? तेरे हृदय में तो मैं ही प्रकट हूं।

अपने मज़े की खातिर गुल छोड़ दी दिए जब।
रूए-ज़मीं के गुलशन मेरे ही बन गए सब ॥ १ ॥
जितने जुबाँ के रस थे कुल तर्क कर दिए जब।
बस ज़ायके जहाँ के मेरे ही बन गए सब ॥ २ ॥
खुद के लिये जो मुझ से दीदों की दीद छूटी।
खुद हुस्न के तमाशे, मेरे ही बन गए सब ॥ ३ ॥
अपने लिये जो छोड़ी ख्वाहिश हवाखोरी की।
बादे-सबा के झोंके मेरे ही बन गए सब ॥ ४ ॥
निज की गरज़ से छोड़ा सुनने की आरज़ू को।

अब राग और बाजे मेरे ही बन गए सब ॥ ५ ॥
जब बेहतरी के अपनी फ़िकरो-ख़याल छूटे।
फ़िकरो-ख़याले-रंगीं मेरे ही बन गए सब ॥ ६ ॥
आहा ! अजब तमाशा ! मेरा नहीं है कुछ भी।
दावा नहीं ज़रा भी इस जिस्मो-इस्म पर ही ॥ ७ ॥
यह दस्तो-पा हैं सब के आँखें ये हैं तो सब की।
दुनिया के जिस्म लेकिन मेरे ही बन गए सब ॥ ८ ॥

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

अवश्य पढ़िये ! अवश्य पढ़िये !!

श्रीमद् भगवद् गीता का एक अप्रतिम भाष्य !

श्री ज्ञानेश्वरी गीता ।

७५० पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) रु०

डाक व्यय तथा वी. पी. के साथ ३।।) रु०

श्रीमद् भगवद्गीता की अनेक संस्कृत और भाषा टीकाएँ प्रसिद्ध हैं उनमें से ज्ञानेश्वरी महाराजकृत भावार्थदीपिका नामक व्याख्या जो पुरानी मरहटी भाषा में लिखी है, दक्षिण में अति उच्च श्रेणी में मानी जाती है। यह ग्रन्थ साहित्य-दृष्टि से अनुपम है तथा सिद्धान्त की दृष्टि से भी अनोखा है। इसमें शांकर मत के अनुसार अद्वैत का प्रतिपादन करते हुए भी भक्ति का अत्यन्त हृदयंगम निरुपण किया है। संस्कृत में श्रीमद् भागवत जितना मधुर है, हिन्दी में तुलसीकृत रामायण जितनी ललित है, उतनीही मनोहर मरहटी भाषा में ज्ञानेश्वरी है। इसके प्रणेता श्री ज्ञानेश्वर महाराज का जन्म विक्रमीय संवत् १३३२ में हुआ था और यह अनुपम ग्रन्थ उन्हों ने अपनी अवस्था के पंद्रहवे वर्ष में लिखा है। इतने ही से उनकी लोकोत्तर बुद्धि और सामर्थ्य की कल्पना हो सकती है।

यह ज्ञानेश्वरी मानो आनन्दामृत का पान करा के पोषण देनेवाली माता है, आत्मस्वरूप की प्रतीति करानेवाली भगिनी है, निर्मल अन्तःकरण से भक्तिरस का प्रस्वेद उत्पन्न करनेवाली चन्द्रिका है, संसार समुद्र से पार करानेवाली नौका है, और मुमुक्षु के मन को द्रवीभूत करानेवाली प्रेमरस की दृष्टि है। संक्षिप्त में यह ज्ञानेश्वरी साक्षात् ज्ञानेश्वरी ही है।

——:•※•:——

अमृत की कुंजी अर्थात् ज्ञान कहानी ।

(हिन्दी काव्य)

मूल्य मात्र—एक आना, डाक व्यय आध आना ।

इस छोटी सी किन्तु उपदेश से भरी हुई पुस्तक में काम क्रोधादि शत्रुओं से बचने के सरल उपाय का कविता में अति सरल वर्णन है ।

—:*:—

शान्ति प्रकाश ।

[हिन्दी काव्य]

मूल्य ॥)   डाक व्यय तथा वी. पी. ।)

संक्षिप्त विषयानुक्रमः—[१] प्रथम कला में शारीरिक, मानसिक, गृहस्थ और सामाजिक धर्म तथा शान्ति अवस्था का निरूपण किया है । [२] द्वितीय कला स्वामी रामतीर्थ जी का जीवन आदर्श, आत्मानुभव संक्षेप शिक्षायें व प्रार्थनाओं का समावेश है । [३] तृतीयकला में एक बालक के द्वारा सद्गुरु राम भगवान् के उपदेश का वर्णन है [४] चतुर्थ कला में ग्रन्थ कर्त्ता ने विशेष भेंट से पुस्तक को सुभूषित कर रक्खा है ।

स्वामी रामतीर्थ जी के चित्र ।

रामभक्तों की अनुकूलता के हेतु स्वामी जी के दर्शनीय चित्र, जो इन पुस्तकों में दिये जाते हैं, उनकी प्रतियां अलग बेचने का प्रबन्ध किया है ।

प्रत्येक प्रति का मूल्य -)—दस प्रति का मूल्य ॥)

Mathematics; Its importance and the way to excel in it.

(With a photo and life-sketch of Swami Rama). Beautifully bound; Annas twelve; Postage Extra.

This article was written for the students by Swami Rama Tirtha when he was joint Professor of Mathematics, Foreman Christian College, Lahore in 1896. It is now printed in a book form and to enhance the value of it and to make it more attractive and useful, a photo of Swami Rama as a Professor along with his life-sketch is presented in an arranged form, specially bringing out those points in Rama's unique life as may serve to inspire and guide many a poor student labouring under sore difficulies and may make his life's burden light and cheerfuly borne.

(Note.—Postage and Packing in all cases extra.)

Can be had form :—

(1) THE RAMA TIRTHA PUBLICATION LEAGUE,
Aminabad Park, LUCKNOW.

(2) MESSRS S. CHAND AND BROTHERS,
Book Sellers and Publishers,
Chandani Chawk, DELHI.